परिशिष्ट 1

कुछ प्रचलित अवनद्ध लोक वाद्य

प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति में संगीत कला का समावेश है। यह भी सर्वविदित है कि प्रत्येक प्रदेश विभिन्न तरह के संगीत से समृद्ध है। जिस तरह विभिन्न गायन शैलियाँ सुनने को मिलती हैं, उसी तरह वाद्य यंत्रों का एक विशाल संग्रह भी देखने एवं सुनने को मिलता है। वाद्य यंत्रों के मूल परिवारों के बारे में शोध करने से ज्ञात हुआ है कि प्राचीन मानव के रोज़मर्रा व्यवहार किए जाने वाले सामान से इसका जुड़ाव है। उन्हीं में से कुछ सुरीली वस्तुओं का चयन कर उन्हें सांगीतिक बनाया गया है। एस. कृष्णस्वामी ने अपनी पुस्तक *म्यूज़िकल इन्ट्रूमेन्ट्स ऑफ़ इंडिया* में लिखा है, "असल में मुख्यत: वाद्य यंत्रों की परंपरा एवं उनके परिवारों का निरीक्षण किया जाए तो ज्ञात होता है कि प्राचीन मनुष्य द्वारा हर दिन व्यवहार में लाए जाने वाली वस्तुओं में से जो उसके आवाज़ से भिन्न थी, परंतु उसमें से श्रुतिमधुर ध्वनि का निकास होता था वही वाद्य यंत्र के रूप में अपनाई गई।" आधुनिक युग में ऐसे ही वाद्य यंत्र सुनने को मिलते हैं।

आइए, भारत के कुछ प्रदेशों में बजाए जाने वाले अवनद्ध वाद्य यंत्रों के बारे में जानें।

अवनद्ध वाद्यों के बारे में मान्यता है कि लय मनुष्य जाति के साथ हमेशा जुड़ी है। इसीलिए जहाँ भी लयात्मक वस्तुएँ पाई जाती हैं, मनुष्य स्वाभाविकत: उससे जुड़ जाता है, जैसे— खड़खड़ी, पत्थर या धातु के टुकड़े, बाँस से निकली ध्वनि, वाद्य यंत्र के चमड़े इत्यादि। दो वस्तुओं के आघात से निकली ध्वनि जब लयात्मक बनाई जाती है तो वह अवनद्ध वाद्य की ओर संकेत करता है।

तमिलनाडु

पञ्चमुख वाद्य— यह पाँच मुखों वाला वाद्य है। इसकी ध्वनि मृदंगम् से मिलती-जुलती है। पाँचों मुख चमड़े से मढ़े जाते हैं। इसका शरीर मिट्टी का बना होता है।

चित्र (क) – पञ्चमुख वाद्य

आन्ध्र प्रदेश

पम्बई— दो बेलनाकार अवनद्ध वाद्य— ये करीब एक फुट लंबे वाद्य होते हैं जो एक के ऊपर एक रखकर एक साथ बाँधे जाते हैं। इन दोनों भागों को कमर से बाँधकर खड़े होकर बजाया जाता है। ऊपर वाला वाद्य काँसे का होता है, जिसके दाहिने मुख पर डंडे से बजाते हैं और नीचे वाला वाद्य लकड़ी का होता है जो हाथ से बजाया जाता है। धातु एवं लकड़ी की आवाज़ का सम्मिश्रण इसे मधुर बनाता है।

चित्र (ख) – पम्बई

© NCERT not to be republished

पंजाब

डफ, चंग और घेरा— संस्कृत ग्रंथों में इसे 'पटह' कहा गया है। धातु का छिलका या लचीली लकड़ी को साँचे में ढालकर और गोल आकार में बकरे, बैल या भेड़ की झिल्ली से ढककर ये यंत्र बनाए जाते हैं। ये हाथों और डंडे, दोनों से बजाए जाते हैं। जिसका व्यास बड़ा होता है वह 'डफली' कहलाता है। चंग, डफ से छोटा होता है। लकड़ी या धातु की एक गोलाकार पट्टी में चमड़े को मढ़कर इसे बनाया जाता है। इसे बनाने में बकरी, भैंस या भेड़िया की खाल का प्रयोग होता है। होली के त्यौहार में राजस्थान, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में डफ बजाए जाते हैं।

विभिन्न क्षेत्रों में यह विभिन्न नाम से जाना जाता है, जैसे

डफ— पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र (8–80 सेमी.)

डम्फला, देउरा, डप्पू— महाराष्ट्र

चेंगु— ओडिशा

चंग— राजस्थान (60 सेमी.)

डफल— हिमाचल प्रदेश (50–60 सेमी.)

चित्र (ग) – डफ

पश्चिम बंगाल

खोल— भक्ति संगीत, जैसे— कीर्तन में यह वाद्य बजाने की प्रथा है। इसे लिटाकर, गोद में लेकर बजाया जाता है और कभी-कभी गले में लटकाकर भी बजाने की प्रथा है। इसका ढाँचा पकी हुई मिट्टी से बना होता है और इसकी लंबाई 10 से 12 इंच की होती है। दोनों तरफ़ के मुँह चमड़े से मढ़े होते हैं। दाहिने मुँह का व्यास करीब सात इंच का होता है और बायाँ मुँह करीब दो से सात इंच का होता है। इसमें पखावज के बोल ही बजाए जाते हैं। उत्तर पूर्व क्षेत्र एवं पूर्वी क्षेत्र में यह वाद्य यंत्र काफ़ी प्रचलित हैं।

चित्र (घ) – खोल

महाराष्ट्र

निम्नलिखित वाद्य एक जैसे हैं, लेकिन उनके प्रादेशिक नाम भिन्न हैं—

घुमाटे— कर्नाटक

बर्रा— आंध्र प्रदेश

© NCERT not to be republished

जमूक्कू— तमिलनाडु
घूमट— गोवा, महाराष्ट्र

चित्र (ङ) – घुमाटे/बर्रा/जमूक्कू/घूमट

कर्नाटक में घुमाटे नामक यंत्र एक मिट्टी का बर्तन है। यह गोलाकार है एवं इसकी गरदन सुराही जैसी होती है। घुमट जो गोवा और महाराष्ट्र में कलाकारों द्वारा बजाई जाती है। यह एक पकी हुई मिट्टी का बना मटका है, जिसका मुँह बकरे की खाल से मड़ा जाता है। सूर्य की गर्मी से एवं आग की गर्मी देकर इस खाल को सख्त किया जाता है। उसके बाद एक लेप लगाकर इसकी ध्वनि को अलग-अलग तरह से बनाया जाता है। अलग-अलग श्रुति के स्वर भी ऐसे ही सुनने को मिलते हैं। गोवा में घूमट के साथ सेमल नाम का एक और वाद्य यंत्र बजाने की परंपरा है। सेमल या शेमल लकड़ी का बना होता है जिसके मुख पर भी बकरी की खाल मढ़ी होती है।

जम्मू कश्मीर

चित्र च – तुम्बकनरी

तुम्बकनरी— यह जम्मू कश्मीर में प्रचलित लोक कलाओं में पाई जाती है। इसका ऊपरी भाग मटके जैसा प्रतीत होता है जिसका मुँह चमड़े से मढ़ा होता है। नीचे वाला भाग आयताकार स्टैंड जैसा है जो लम्बा, ऊपर सँकरा, नीचे चौड़ा और खुला होता है। देखने से प्रतीत होता है कि कोई मटकी स्टैंड पर रखी है। 'इरान के तुम्बक' वाद्य यंत्र से इसकी सामान्यता पाई जाती है। यह गोद में खड़ी करके बजाई जाती है। ऊपर के चमड़े से मढ़े हुए भाग को अँगुलियों से बजाते हैं और निचले अंश पर खुले भाग को हथेली से बजाया जाता है।

मणिपुर

पुंग— यह मणिपुर और त्रिपुरा का खास अवनद्ध वाद्य है। खोल की तरह प्रतीत होने के बावजूद इसकी बनावट भिन्न होने के कारण ध्वनि अलग है। यह लकड़ी का बना होता है, बीच का भाग चौड़ा होता है और दाहिने एवं बायें की ओर इसके दोनों मुँह खुले होते हैं जो चमड़े से मढ़ी जाती है।

© NCERT not to be republished

दाहिना मुँह बायें की अपेक्षा ज़्यादा बड़ा होता है। इस पर बहुत कसकर चमड़े की पतली रस्सियाँ बाँधी जाती हैं। इसे रस्सी से गले में लटकाकर या नीचे रखकर हाथों से बजाया जाता है। मणिपुर का मशहूर नृत्य पुंग चोलम है, जिसे प्रस्तुत करते समय इसे गले में लटकाकर नाचा जाता है। पुंग से नृत्य करने वाले, लय का एक मनोरम दृश्य दर्शाते हैं।

चित्र (घ) –पुंग

गुजरात

सरिंदा/सुरिंदा/सुरंदा— इसे बजाने का ढंग बिलकुल सारंगी जैसा है, लेकिन यह देखने में भिन्न है। इसका तुम्बा नीचे की तरफ़ होता है और डाँड जिस पर तार बिछाए जाते हैं, कंधों के सहारे रखा जाता है। गज से ही तारों पर रगड़कर इसे बजाया जाता है। तुम्बा खोखला और चमड़े से मढ़ा होता है। तीन मुख्य तार होते हैं जो अलग-अलग स्वर में बाँधे जाते हैं। इसमें भी छह तार हैं। बंगाल, त्रिपुरा, असम और हिमाचल प्रदेश में यह सरिंदा नाम से प्रचलित है।

चित्र (ज)–सरिंदा

पाठ्यपुस्तक में प्रयुक्त हुए कुछ विशेष शब्द

नीलाम्बरी रागम्	प्लुत-3 मात्रा	उदात्त	पण
तमबट्टम	आदिताल	अनुदात्त	केल्वि
कृष्णनाट्टम	सम/विषम पदीताल	स्वरित	तरंगम्
ललित कला	आवर्त	साम	चतुर्विध वर्गीकरण
इसइ	विसर्जितम	गांधर्व वेद	मिज़राब
आंकिक	सीर	पञ्चमरबु	महती वीणा
ऊर्ध्वमुखी	अलुकु	मणिमेखलइ	मृत्तिका
त्रिपुष्कर वाद्य	फ़र्द	तोल्काप्पियम्	तविल
जाति और प्रबंध	सोरू	संगम्	पुलिका
पक्ष वाद्य	धामा (तबले का बायाँ)	तल्लपाक	किनार की बाज

© NCERT not to be republished

परिशिष्ट 2

तबला एवं पखावज वाद्यों के प्रमुख कलाकार

अनिन्दो चैटर्जी

चित्र (झ) – अनिन्दो चैटर्जी

अनिन्दो चैटर्जी का जन्म 1954 में, पश्चिम बंगाल में स्थित बाराशात नामक स्थान पर हुआ। यह फ़र्रूखाबाद, पंजाब, लखनऊ घरानों के प्रतिनिधि माने जाते हैं। ज्ञान प्रकाश घोष एवं उस्ताद अफ़ाक हुसैन खाँ से उन्होंने तबले की शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने संगीत गायन एवं वादन में तबले के अतिरिक्त सितार की भी शिक्षा प्राप्त की है। रविन्द्र भारतीय विश्वविद्यालय और भारतीय विद्या भवन लंदन में शिक्षक भी रहे। संगीत के श्रेष्ठ कलाकारों के साथ उन्होंने संगत की है एवं एकल तबला वादन की भी अनेक प्रस्तुतियाँ दी हैं। यूरोप, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया में अनेक स्थानों पर उन्होंने अपनी प्रस्तुति के द्वारा लोगों का मन मोह लिया है। सन् 2002 में, इन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

कन्ठे महाराज

चित्र (ञ) – कन्ठे महाराज

वर्ष 1879 के 15 सितम्बर को इस महान तबला वादक का जन्म हुआ। बनारस घराने के प्रतिनिधि कन्ठे महाराज ने पंडित बालदेऊ सहाईजी एवं पंडित राम सहाय से संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। संगीत जगत में इनका नाम आज भी बहुत सम्मान से लिया जाता है। लयकारी के मार्तन्ड कन्ठे महाराज ने भारत के विख्यात संगीतकारों के साथ तबले पर संगति की एवं संगीत सम्मेलनों में बहुत ख्याति प्राप्त की। एकल वादन में इनकी लयकारी की चमत्कारिता एवं बोल और कायदे की पेशकश आज भी संगीतज्ञों में चर्चा का विषय है। इन्होंने किशन महाराज जैसे शिष्यों को संगीत शिक्षा प्रदान की थी। संगीत नाटक अकादमी ने भी इन्हें पुरस्कृत किया।

शंकर घोष

चित्र (ट) – शंकर घोष

शंकर घोष का जन्म 1935 में हुआ। इन्हें तबले की शिक्षा अनन्त बोस एवं ज्ञान प्रकाश घोष से मिली थी। इन्होंने अपनी ही एक शैली बनाई है जिसमें फ़र्रूखाबाद, बनारस, पंजाब एवं लखनऊ के बाज समाहित हैं। बीसवीं एवं इक्कीसवीं शताब्दी के महान तबला विद्वानों में इन्होंने गायन, वादन एवं

© NCERT not to be republished

नृत्य, तीनों के साथ संगति में कुशलता पाई है। क्रियात्मक एवं महत्वपूर्ण तकनीक द्वारा इन्होंने तबला वाद्य को बजाने के असंख्य तरीके अपनाए एवं शिष्यों को भी ज्ञान बाँटा। वर्ष 2000 में इन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

लालजी रघुनाथ गोखले

चित्र (ठ) – लालजी रघुनाथ गोखले

तबले में महारत हासिल करने वाले लालजी रघुनाथ गोखले का जन्म 1919 में हुआ। ये रत्नागिरी, महाराष्ट्र के निवासी थे। इन्होंने तबला शास्त्र में शिक्षा अहमद जान थिरकवा के सानिध्य में प्राप्त की। इनकी वादन शैली में फ़रूखाबाद, अजराढ़ा एवं दिल्ली घराने की खूबियाँ पाई गई हैं। ये ऑल इंडिया रेडियो में तीस साल और प्रभात फ़िल्म कंपनी में दस साल कार्यरत रहे। इसके उपरांत भारत के सर्वश्रेष्ठ गायकों एवं वादकों के साथ संगत करके इन्होंने मूल्यवान योगदान दिया। तबला वाद्य में अपना योगदान देने के कारण वर्ष 1997 में संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से विभूषित हुए।

सुरेश तलवलकर

चित्र (ड) – सुरेश तलवलकर

सुरेश तलवलकर का जन्म 1948 में मुम्बई शहर में हुआ। श्री पन्धारीनाथ नागेशकर और विनायकराव घन्घरेकर से इन्होंने तबला की शिक्षा ग्रहण की थी। रामनद इश्वरन ने इन्हें मृदंगम के सूक्ष्म तत्वों का ज्ञान देकर इनकी कलाकारी को शानदार ऊँचाई पर पहुँचाया। सुरेश तलवलकर ने गजानन बुआ जोशी और निवृत्तिबुआ सरनायक से गायन की भी शिक्षा प्राप्त की थी। तबला वाद्य के गुणी एवं विशेषज्ञ होने के नाते इन्होंने विभिन्न मंचों पर प्रदर्शन कर और सभी विशेष कलाकारों के साथ संगत कर तबले में बजने वाली लयकारी और बोल को बहुत प्रतिष्ठित स्थान पर पहुँचाया है। इन्होंने गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत कई छात्रों को शिक्षा दी है। वर्ष 2004 में इन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और 1966 में ऑल इंडिया रेडियो से पुरस्कार प्राप्त हुआ। इन्हें पश्चिमी वाद्य यंत्रों के साथ कई परियोजनाओं में शामिल होकर तबला वाद्य को ऊँचाइयों पर पहुँचाने का श्रेय दिया जाता है।

अयोध्या प्रसाद

पखावज के महान वादक अयोध्या प्रसाद का जन्म 1891 में मध्य प्रदेश के दतिया जिले में हुआ। ये कुदऊ सिंह घराने के प्रतिनिधि हैं। पाँच साल की उम्र से इनके पिताजी गया प्रसाद ने इन्हें पखावज वाद्य की शिक्षा देने में निहित किया। अयोध्या प्रसाद विशिष्ट तालों को बजाने

© NCERT not to be republished

एवं घरानेदार प्रथा को बनाए रखने के लिए जाने जाते हैं। यह रामपुर महाराजा के दरबार में गायक रहे और इन्हें तबला विद्यालय चलाने का भी श्रेय प्राप्त है। वर्ष 1967 में इन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से नवाज़ा गया और 1966 में भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से भी सम्मानित किया गया है।

चित्र (ढ) – अयोध्या प्रसाद

भवानी शंकर कथक

चित्र (ण) – भवानी शंकर कथक

मुम्बई शहर के महान पखावज एवं तबला वादक भवानी शंकर कथक का जन्म 1956 में हुआ। सर्वप्रथम इन्होंने अपने पिता जयपुर घराने के बाबूलाल कथक से पखावज सीखा। इसके उपरांत इन्होंने शिवलाली कथक से भी पखावज की शिक्षा प्राप्त की और अजराढ़ा घराने के विद्वानों से तबले की शिक्षा भी प्राप्त की। बहुत अल्प आयु में ही इन्होंने सितारा देवी जैसे कथक नृत्यांगना के साथ पखावज से संगत कर बहुत ख्याति प्राप्त की। संगीत गायन एवं वादन के महान कलाकार, जैसे— भीमसेन जोशी, हरिप्रसाद चौरसिया, पंडित जसराज इत्यादि के साथ संगत करने का श्रेय भी इन्हें प्राप्त है। भवानी शंकर ढोलक, डफ, तुम्बा, हुडुक्का इत्यादि वाद्य बजाने में भी पारंगत हैं। वर्ष 2003 में संगीत नाटक अकादमी ने इन्हें पुरस्कृत किया। फ़िल्म जगत के लिए भी इन्होंने अनेक रचनाएँ बनाई। भक्ति संगीत में भी इनके कई रिकॉर्ड उपलब्ध हैं। राजस्थान सरकार ने भी इन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया।

राम आशीष पाठक

राम आशीष पाठक का जन्म 1937 में दरभंगा, बिहार के आमता नामक स्थान पर हुआ। इनके दादा पंडित विष्णुदेव पाठक ने इन्हें पखावज बजाने की शिक्षा दी जो कुदऊ सिंह घराने के प्रतिनिधि थे। राम आशीष पाठक पखावज के साथ-साथ तबला वादन में भी कुशल थे। इन्हें ध्रुपद गायक के साथ कुशल संगत करने का श्रेय प्राप्त है। ये ऑल इंडिया रेडियो और सॉन्ग एण्ड ड्रामा डिवीजन में भी कार्यरत रहे। वर्ष 1995 में इन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से नवाज़ा गया। देश-विदेश में इनकी अनेक रिकॉर्डिंग उपलब्ध हैं।

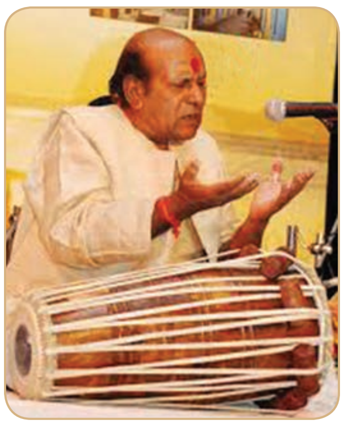

चित्र (त) – राम आशीष पाठक

© NCERT not to be republished

साखाराम तावडे

चित्र (थ) – साखाराम तावडे

साखाराम तावडे का जन्म 1879 में हुआ। पखावज वाद्य बजाने वाले मशहूर कलाकारों में इनकी गिनती होती है। बाला साहब पानसे और शंकर भैया इनके गुरु थे। ग्वालियर के राज दरबार में ये गायक रहे। इसके पश्चात् इन्होंने इंदौर में पखावज सिखाने के लिए विद्यालय की स्थापना कर अनेक शिष्यों को शिक्षा प्रदान की। तबला एवं पखावज, दोनों ही वाद्यों में इन्होंने शिक्षा प्रदान की। लखनऊ के भातखंडे कॉलेज ऑफ़ म्यूज़िक से ये हमेशा जुड़े रहे। इसी संस्था ने इन्हें संगीत में स्नातकोत्तर की डिग्री प्रदान की और इनकी कला को सम्मान दिया। साखाराम तावड़े ने कुछ किताबें भी लिखी हैं।

अल्ला रक्खा खाँ

चित्र (द) – अल्ला रक्खा खाँ

पंजाब घराने के महान तबला वादक उस्ताद अल्ला रक्खा खाँ का जन्म 1915 में पंजाब के रतनगढ़ जनपद के गुरदासपुर में एक किसान परिवार में हुआ था। इनके पिता हाशिम अली मध्यमवर्गीय किसान थे, जिनका संगीत से कोई संबंध नहीं था। किंतु मामा शौकिया गाना-बजाना किया करते थे और वे ही इनकी प्रेरणा के स्रोत बने। अल्ला रक्खा खाँ जब बहुत छोटे थे, तब भी घर की थालियों पर उनकी अँगुलियाँ थिरकती रहती थीं। बड़े होने पर ये पठानकोट की एक नाटक कंपनी के साथ जुड़ गए। उस नाटक कंपनी में यह भक्त प्रहलाद आदि की भूमिकाएँ निभाते थे और गाना भी गाया करते थे। किंतु प्राण तो तबला में ही बसे हुए थे। अत: पंजाब घराने के एक तबला वादक भाई नासिर (नासिर खाँ) से सीखना शुरू किया। उस्ताद आशिक अली से गाना भी सीखने लगे। लेकिन नाटक कंपनी के लगातार यात्रा पर रहने के कारण सीखने का सिलसिला टूट जाता था। बाद में उसी नाटक कंपनी में काम करने वाले लाल मोहम्मद से ये सीखने लगे। एक बार लाल मोहम्मद ने इनसे कहा कि अगर सचमुच तबला सीखना है तो लाहौर जाकर उस्ताद कादिर बख़्श से सीखो। यही बात भाई नासिर ने भी इनसे कही थी। अत: एक दिन सब कुछ छोड़कर ये लाहौर जाकर उस्ताद कादिर बख़्श के शिष्य बन गए।

उस्ताद अल्ला रक्खा 1936 से 1942 तक दिल्ली और मुंबई के आकाशवाणी केंद्रों में कार्यरत रहे। बाद में मुंबई के राजकमल स्टूडियो से जुड़कर हिंदी और पंजाबी की कई फ़िल्मों का संगीत निर्देशन भी किया। *माँ-बाप, मदारी, जग्गा, सबक, आलम आरा, घर की लाज, सती अनसुय्या* जैसी फ़िल्मों का संगीत इन्होंने ए. आर. कुरैशी नाम से दिया। देश के विभाजन के बाद उस्ताद ने भारत में ही रहकर पंजाब के तबले को एक नया आयाम दिया। 'शेर-ए-पंजाब' कहलाने वाले उस्ताद अल्ला रक्खा के तबले में एक ओर उनका अथक रियाज़ बोलता था तो

© NCERT not to be republished

दूसरी ओर उनका मस्तिष्क। विषम मात्राओं की तालों में भी साधिकार वादन और एक से बढ़कर एक लय के चमत्कारिक प्रयोग इनकी विशेषता थी। खाँ साहब कहते थे कि, 'तबला सुर में बोले तो अच्छी बात है, लेकिन अगर तबले में सुर बोले तो और भी अच्छी बात है।' स्वतंत्र वादन के साथ-साथ स्वर वाद्यों एवं नृत्य की संगति के लिए इनका तबला विशेष पसंद किया गया। यद्यपि इन्होंने गायन की भी संगति की थी। एक ज़माने में पंडित रविशंकर के सितार वादन के साथ इनके तबला वादन ने दुनियाभर में धूम मचा दी थी। आज भारत में पंजाब घराने के तबले का जो अस्तित्व है, वह खाँ साहब के कारण ही है। खाँ साहब उस्ताद अल्ला रक्खा के तीनों पुत्र— पद्मभूषण उस्ताद ज़ाकिर हुसैन, फज़ल कुरैशी और तौफीक़ कुरैशी, संगीत के साथ अत्यंत सक्रियता से जुड़कर विश्वव्यापी कार्य कर रहे हैं। योगेश शमसी और अनुराधा पाल जैसे शिष्य भी परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। पद्मश्री से अलंकृत खाँ साहब का आकस्मिक निधन हृदय गति रुक जाने के कारण 3 फ़रवरी, 2000 को हुआ।

वाजिद हुसैन खाँ

लखनऊ घराने के खलीफ़ा उस्ताद वाजिद हुसैन खाँ का जन्म् 1906 में लखनऊ में हुआ था। इनके पिता उस्ताद बड़े मुन्ने खाँ लखनऊ घराने के प्रसिद्ध तबला वादक थे, अत: वाजिद हुसैन की शिक्षा-दीक्षा उन्हीं के द्वारा हुई। बाद में पिता के निधन के उपरांत अपने चाचा उस्ताद आबिद हुसैन से भी इन्होंने सीखा। वाजिद हुसैन ने अपने पिता और चाचा द्वारा प्राप्त विद्या को अथक रियाज़ करके सिद्धि प्राप्त की और अपने घराने की परंपरा का खूब विस्तार किया।

चित्र (ध) – वाजिद हुसैन खाँ

कथक नृत्य के साथ-साथ लखनऊ शहर ठुमरी गायन के लिए भी प्रसिद्ध है। अवध (लखनऊ) के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह के संरक्षण में कथक नृत्य और ठुमरी का विकास साथ-साथ ही हुआ। तबला वादन की एक नयी शैली भी लखनऊ घराने के नाम से विकसित हुई। इसकी नींव आसिफुद्दौला के शासन काल में ही उस्ताद मोदू खाँ और बख़्श खाँ द्वारा पड़ चुकी थी। उस्ताद वाजिद हुसैन इस वादन शैली के खलीफ़ा माने गए थे। नृत्य का संगीत करते समय जहाँ उनका तबला बादलों की तरह गरजता था, वहीं ठुमरी आदि गायन शैलियों की संगति करते समय उनके तबले से जैसे रस की बूँदे टपकती थीं। लखनऊ घराने का शुद्ध और पारंपरिक वादन करने वाले वाजिद खलीफ़ा के वादन की एक और बड़ी विशेषता थी— रौ वादन। उनका रौ वादन सुनकर ऐसा लगता था जैसे कई भँवरे एक साथ गुँजार कर रहे हों। ठाह, दुगुन में रेला बजाकर जब वे चौगुन में उसकी 'रौ' बनाते थे तो उस 'रौ' का 'रव' सुनते ही बनता था। वृद्धावस्था में भी उनके तबले में वह दम, 'रव' और बल था कि उनका वादन सुनते हुए प्रतीत होता था कि दीवारों से भी तबले की ध्वनि आ रही है।

उस्ताद आबिद हुसैन की सुपुत्री काज़मी बेगम विदुषी महिला थीं। उन्हें तबले का अच्छा ज्ञान प्राप्त था। आबिद हुसैन को कोई पुत्र न होने के कारण उनकी कला विद्या की और संपत्ति की भी उत्तराधिकारी वे ही थीं। उस्ताद आबिद हुसैन ने अपनी इस प्रिय पुत्री का निकाह अपने सर्वश्रेष्ठ शिष्य वाजिद हुसैन से किया और उन्हें अपना दामाद बना लिया। वाजिद साहब काफ़ी समय तक कोलकाता में भी रहे और वहाँ भी उन्होंने अपने घराने और बाज का यथेष्ट प्रचार-प्रसार किया। खाँ साहब को कई मान-सम्मान प्राप्त हुए, जिनमें उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार भी शामिल है। खलीफ़ा उस्ताद वाजिद हुसैन खाँ का निधन 24 मई, 1978 को हुआ। इनके शिष्यों में इनके सुपुत्र उस्ताद आफ़ाक हुसैन भी श्रेष्ठ ताबलिक हुए। पंडित सुदर्शन अधिकारी और पंडितकनाई दत्त जैसे शिष्यों ने भी इस परंपरा का खूब प्रचार-प्रसार किया।

© NCERT not to be republished

परिशिष्ट 3

ध्वनि का मस्तिष्क पर प्रभाव

संगीत एक ऐसी कला या विद्या है जिसका माध्यम ध्वनि अथवा नाद है। नाद की दुनिया पर जब हम गहन दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि ये विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ कभी हमें चौंकाती हैं, कभी दिलचस्पी जगाती हैं, तो कभी अनूठी लगती हैं। कभी मेघ गर्जन की तरह तेज़, तो कभी नर्म मुलायम मखमली घास पर किसी की पदचाप... पक्षियों के कलह और पशुओं के रंभाने की आवाज़ों के साथ कभी फ़ेरी वालों की हाँक लगाती आवाज़ें, तो कभी अनेक मानवीय ध्वनियाँ। नदी की धाराओं की कलकल ध्वनि, पत्तियों की सरसराहट, आकाश से गिरती वर्षा की बूँदों की रिमझिम और इन जैसी अनेक ध्वनियाँ प्रकृति में समाहित हैं और एक संवेदनशील नाद साधक इन सभी में नाद को देखता और अनुभव करता है।

कविवर वर्डसवर्थ ने अपनी कविता (रिटर्न इन मार्च) में ध्वनि को इस प्रकार ध्वनित किया है—

'वहाँ पर्वत मालाओं में प्रसन्नताएँ झूमती हैं।
वहाँ झरनों में जीवन होता है...'

शनैः शनैः इंसान ने प्रकृति की ध्वनियों के आधार पर स्वनिर्मित ध्वनियाँ उत्पन्न करने का रास्ता खोजा और फिर ध्वनि की तारता अर्थात् ऊँचाई-निचाई के आधार पर उन्हें नियोजित किया। सात मुख्य एवं अतिरिक्त स्वरों के बीच एवं इनके संयोजन से ही अनेक संगीत सृजित हुए हैं और होते रहते हैं। यह एक अनंत यात्रा है जिसमें अनेक प्रकार के संगीत की रचना होती है। विभिन्न प्रकार के नादों अथवा स्वरों के संयोजन से जो हार्मनी उत्पन्न होती है, वह संगीत निर्माण का काम करती है। वरन् विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के मेल से शोर और ध्वनि प्रदूषण का भी खतरा बना रहता है।

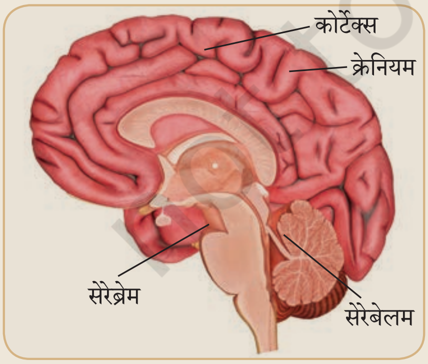

चित्र (न) – मनुष्य मस्तिष्क

एक उदाहरण के माध्यम से इसे समझने का प्रयास करते हैं— किसी मेले का दृश्य है... विक्रेता और खरीददार ज़ोर-ज़ोर से वस्तुओं का मोल-तोल कर रहे हैं, सर्कस शुरू हो चुका है, जादूगर जादू के नाम पर हाथ की सफ़ाई दिखा रहे हैं, बच्चे दौड़ रहे हैं, ध्वनि विस्तारक यंत्र विभिन्न प्रकार की अस्पष्ट ध्वनियों का विस्तार करके जैसे अपने कर्तव्य का मुस्तैदी से पालन कर रहे हैं। वस्तुतः यह सब संगीत नहीं है, लेकिन इन सभी में सांगीतिक तत्व अवश्य हैं। अगर इन्हें सुनियोजित क्रम में प्रस्तुत किया जाए तो इसे आसानी से समझा जा सकता है। एक संगीतज्ञ इसे सफलतापूर्वक अंजाम देता है। इसी प्रकार कोई नृत्यकार इस मेले में विभिन्न व्यक्तियों के हाव-भाव एवं मुद्राओं का अध्ययन

करके अपनी नृत्य संरचनाओं में उनका प्रयोग कर सकता है, तो वहाँ की वस्तु स्थिति एवं विभिन्न दृश्यों को केंद्र में रखकर किसी नाटककार द्वारा किसी नाटक की भी रचना की जा सकती है।

ध्वनि की महत्ता ऐसी है कि वह ऊर्जा का एक रूप है, प्रयासों का परिणाम है और सृजन की पृष्ठभूमि है, जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। तात्पर्य यह है कि जिन ध्वनियों को हम पहचान पाते हैं, वे प्राकृतिक रूप से आस-पास के वातावरण में फैली होती हैं, जैसे— आँधी-तूफ़ान की आवाज़ें, पत्तियों की सरसराहट, बारिश की रिमझिम, चिड़ियों की चहचहाहट, नदियों का कलकल प्रवाह और पशुओं के रंभाने की आवाज़ें आदि। ये ऊर्जा मानव-मस्तिष्क को प्रकृति में फैली असंख्य आवाज़ों में से किसी आवाज़ विशेष और मानव मस्तिष्क पर पड़े उनके प्रभाव को भी पहचानने में मदद करती हैं। सभी निर्माण कार्य, ऊर्जा की अलग-अलग प्रकार की निरंतरता के ही परिणाम हैं तथा ध्वनि इस ऊर्जा के निरंतर कंपन का मौलिक और बीजभूत रूप है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि आनंद प्रदान करने वाली ध्वनि गायन है। दिल की धड़कनें हमें एक-दूसरे से पारस्परिक रूप से जोड़ती हैं।

मस्तिष्क के कंपन की निरंतरता अल्फ़ा, बीटा, डेल्टा और थीटा के आधार पर अलग-अलग होती हैं। जब मस्तिष्क विभिन्न प्रकार की हार्मोनिक ध्वनियों की तारता संगीत के माध्यम से स्पष्ट रूप प्राप्त करता है, तब वह स्थायी तारता मानव मस्तिष्क को समृद्धि प्रदान करते हुए उस पर गहरा प्रभाव भी छोड़ती है।

अर्धगोलक

मानव मस्तिष्क में दो अर्धगोलक होते हैं। प्रथम को प्रबल अथवा प्रधान कहा जा सकता है, तो दूसरा उससे कम प्रबल या अप्रधान होता है, लेकिन ये दोनों ही अर्धगोलक मानव-मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ पहुँचाने का काम करते हैं। मानव मस्तिष्क में सूचनाएँ एकत्र करने का एक ही भाग होता है। सामान्यत: अधिकांश लोगों के मस्तिष्क में बाईं ओर स्थित प्रधान अर्धगोलक भाषाई और तार्किक होता है। जबकि मस्तिष्क के दाईं ओर रहने वाला अप्रबल अर्धगोलक, स्थान संबंधी सूचनाएँ देने और अभाषाई प्रक्रियाओं पर केंद्रित होता है। भाषाओं को समझने और उसकी रचना करने की योग्यता हमारे मानवीय अनुभवों का अति आवश्यक अंग है। दिलचस्प बात यह है कि मस्तिष्क में ऐसी गतिविधि की आवश्यकता होती है जिसमें दोनों अर्धगोलक उपयोगी बातों को एक साथ मिलकर समाहित कर सकें।

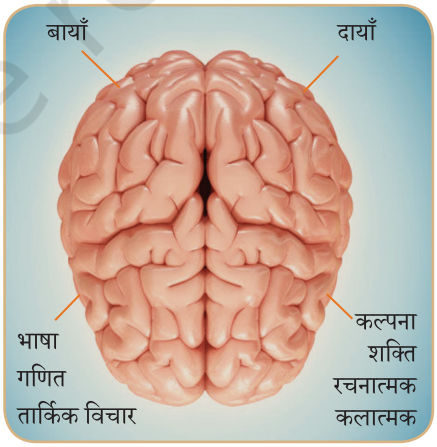

चित्र (प) – मस्तिष्क के दो भाग

© NCERT not to be republished

जब शुद्ध आवाज़ अथवा सांगीतिक ध्वनि के उपयोग हेतु अप्रधान अर्धगोलक प्रोत्साहित अथवा उत्तेजित होता है तो बहुधा वह असाधारण स्थिति के प्रति जाग्रत करता है, क्योंकि अप्रभावी अर्धगोलक अंतर्ज्ञान से प्राप्त आवश्यक योग्यताओं से युक्त होता है। इस स्थिति में नाड़ी संबंधी हरकतें हमारे यथार्थ, आंतरिक और बाह्य, दोनों ज्ञान को हमारे नित्य प्रति के अनुभवों से पृथक करती हैं। हमारी सोच-समझ तब अधिक ज़िम्मेदार, स्पष्ट, तीव्र, सूक्ष्म और संस्कारित हो उठती है।

चित्र (फ) – लकड़ी और चमड़ा

चित्र (ब) – धातु

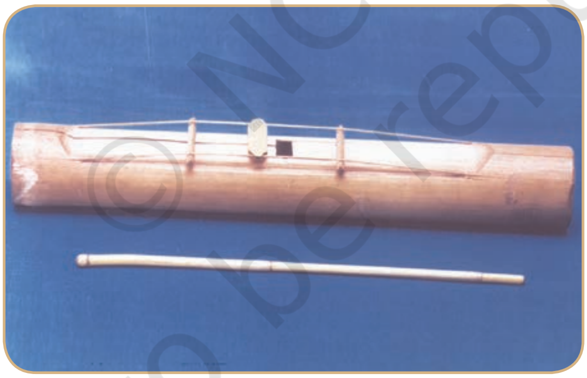

चित्र (भ) – बाँस

चित्र (म) – मिट्टी

ध्वनि का विज्ञान

किसी व्यक्ति के कान 20 से 20 हज़ार हर्ट्ज़ तक की ध्वनि तारता, प्रति सेकंड सुनने की क्षमता रखते हैं। इससे कम की ध्वनि इंफ्रासोनिक और इससे अधिक की ध्वनि अल्ट्रासोनिक कहलाती है। ज्ञातव्य है कि इंफ्रासोनिक की तारता 20 हर्ट्ज़ प्रति सेकंड से कम होती है, जबकि अल्ट्रासोनिक ध्वनि की तारता 20 हज़ार हर्ट्ज़ प्रति सेकंड से अधिक ध्वनि सामान्यत: वायु, जल और काष्ट आदि के माध्यम से तरंगित होते हुए अपनी यात्रा तय करती है। दरअसल, ध्वनि को अपने

© NCERT not to be republished

अस्तित्व के विस्तार के लिए किसी न किसी माध्यम की आवश्यकता पड़ती ही है, क्योंकि शून्य से कोई ध्वनि नहीं पैदा होती। ध्वनि, ठोस पदार्थ, तरल पदार्थ और वायु में अलग-अलग तरह से क्रियान्वित होती है। यहाँ तक कि लचीले, ठोस तथा घने पदार्थों से ध्वनि के गुजरने की प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न होती है। ध्वनि गैस की अपेक्षा ठोस तथा तरल पदार्थों से अधिक तेज़ी से गुज़रती है। इस संदर्भ में यह जानना भी उचित और प्रासंगिक होगा कि अधिकांश भारतीय वाद्य यंत्र सामान्यत: लकड़ी, धातु या मिट्टी अथवा चीनी मिट्टी आदि से बनते हैं। इनमें से अधिकांश वाद्यों में छिद्र एवं सुराख आदि भी होते हैं, ताकि वायु अपनी यात्रा निर्विघ्न तय कर सके। उदाहरण के लिए, मृदंग एवं सरिंदा आदि वाद्यों को देखने से पता चलता है कि इन वाद्यों में ध्वनि तरंगें क्रमबद्ध रूप में दबाव तथा विरल रूप में अपनी यात्रा तय करती हैं।

ध्वनि हर प्रकार के संगीत का आधार तत्व है। संगीतोपयोगी ध्वनि से मानव को एक ईश्वरीय वरदान प्राप्त हुआ। वह न केवल सर्वत्र व्याप्त सृजनात्मकता के गीत गाता है, बल्कि आंतरिक रूप से स्वयं को भी सृजित करने की क्षमता और प्रेरणा देता है। पाइथागोरस तो शून्य के संगीत की भी परिकल्पना करते थे। ध्वनि पर आधारित मौखिक सांगीतिक शिक्षा के विस्तार ने बच्चों कि मानसिकता पर विवेकशीलता की गहरी छाप छोड़ी है।

किसी शिशु की शिक्षा का प्रारंभिक चरण अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। शिक्षा के आधारभूत तत्व इसी समय बच्चों के मस्तिष्क में पनपते हैं। इनका स्थान कितना महत्वपूर्ण होता है यह इसी से स्पष्ट होता है कि ये मौलिक तत्व बच्चों की भावी शिक्षा पर स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं। संगीत को जब आवश्यक तौर पर सकारात्मक रूप में बच्चों को सिखाया जाता है, तब ये बच्चों के मूल शिक्षा ग्रहण में भी सहायक सिद्ध होते हैं। साथ ही अन्य रूपों में भी उनकी मदद करते हैं। बच्चों की श्रवण शक्ति अत्यंत तीव्र होती है। वे ध्वनि के विषय में बहुत ही सजग होते हैं और प्राय: हर शब्द पर ध्यान देते हैं। तभी तो वे किस्से-कहानियों, गुड्डे-गुड़ियों के खेल, नाटक एवं एनिमेशन फ़िल्मों में खूब रुचि लेते हैं। संगीत उनकी सृजन शक्ति में वृद्धि लाता है। संगीत का यह विशेष गुण है कि वह अपने साधकों में एकाग्रता, केन्द्रिभूत सजगता, समन्वय एवं सहभागिता के प्रयास, परिकल्पना, स्मृति और धारणा, शक्ति, आत्मावलोकन अर्थात् अपने अंदर झाँकने की प्रवृत्ति आदि का विकास करता है। इसका प्रभाव तभी से आरंभ हो जाता है जब संगीत की कक्षा में इसकी शिक्षा की शुरुआत होती है, इसलिए इसकी शिक्षा की व्यवस्था आरंभिक चरणों से ही शुरू होनी चाहिए। ध्वनि हमारे बोध और ज्ञान को समृद्ध करती है।

संगीत हर कला के अंदर, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में मौजूद होता है। हम इसके प्रभाव का अनुभव बच्चों, शिशुओं में कर सकते हैं जिसकी शाब्दिक व्याख्या नहीं की जा सकती है... जिसे उन्हें सिखाया नहीं जा सकता है। माताएँ हर समय अपने बच्चों के लिए गीत गाती रहती हैं और बच्चों पर उसका असर होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि संगीत हमारे जीव विज्ञान की धरोहर का भी एक अंग है। उदाहरण के लिए, इसके दो पहलू हैं, माँ अपने बच्चों के लिए भावनाओं

© NCERT not to be republished

में डूबकर गाती है और संगीत के वे स्वर उसकी रचनात्मकता को बढ़ावा देते हैं। लेकिन, ठीक उसी समय, गीत सुनते हुए बच्चा अपनी समझ और सामर्थ्य के अनुसार उस संगीत पर अपनी प्रतिक्रिया भी देता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह स्थिति वैज्ञानिक रूप से समझ और ज्ञान का विकास करती है। संगीत केवल रचनात्मकता का ही विकास नहीं करता है। बल्कि वह स्वयं के सृजन के लिए आवश्यक तत्वों को भी एकत्र करता है। संगीत के विभिन्न प्रकारों के साथ किए गए प्रयोगों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह हमारी समस्याओं का निवारण करते हुए रचनात्मक क्रियाशीलता को भी बढ़ाता है। यह एक अत्यंत सरल, सहज और सुहावना रास्ता है जो सृजनात्मकता के अनुभवों का विकास करते हुए उसमें नित प्रति कुछ न कुछ नया जोड़ता है।

नाद योग

चित्र (य) – बाऊल

नाद योग की जड़ें वेद में हैं। यह अलौकिक ध्वनि कंपन का विज्ञान है। आत्म निरीक्षण करने वाले अद्वैतवाद, एक ब्रह्म के सिद्धांत को मानने वाले और सर्वोच्च अभिज्ञान को जानने वाले संतों-योगियों ने अपने ज्ञान के आधार पर इस रहस्य को उद्घाटित किया है।

नाद योग अति सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले लोगों को आंतरिक संगीत और ध्वनि के माध्यम से उस स्थिति में पहुँचाता है, जहाँ केवल मौन तथा शांति का साम्राज्य होता है। फिर वह व्यक्ति सृजन के क्षणों से गुज़रते हुए ईश्वर तक जा पहुँचता है। इस ऊँचाई पर वही व्यक्ति पहुँच पाता है, जिसने साधना के द्वारा आत्मशुद्धि कर ली हो। किसी व्यक्ति को साधना के इस उच्च स्तर में पहुँचाने की क्षमता भारतीय शास्त्रीय संगीत में मौजूद राग, ताल, श्लोक, मंत्र, कीर्तन, गीत एवं भजन आदि में है। इनके अभाव में कोई व्यक्ति स्वयं को नाद योगी के रूप में स्थापित नहीं कर सकता। वह वेदांत के दर्शन को सीख और समझ सकता है। कोई भी व्यक्ति इससे जुड़ सकता है, भले ही वह इसमें प्रशिक्षित हो अथवा नहीं। यही साधना उसे अपने शरीर, मन, भावना और बुद्धि के शुद्धिकरण के मार्ग पर ले जाती है। सृजन का यह रूपांतरण इसलिए होता है, क्योंकि एक व्यक्ति अपने सूक्ष्म आंतरिक ज्ञान और कंपन से इसे कर सकता है।

सृष्टि की सारी गतिविधियाँ कंपन से ही संचालित होती हैं। कंपन अर्थात् ऊर्जा ध्वनि के रूप में विभिन्न रूप में मौजूद रहती है। अत्यंत विशाल और ठोस से लेकर बिल्कुल सूक्ष्म रूप में भी विभिन्न तत्वों से बना एक भौतिक शरीर और एक वरदानी सूक्ष्म शरीर भी वस्तुत: कंपन ही है। प्राणमय कोश के अनुसार ऊर्जा के नियम नाड़ी और चक्र को संचालित करते हैं और जो अधिकांशत: ध्वनि के कंपन से प्रेरित और प्रभावित होते हैं। यही कारण है कि संगीत का हम सभी पर काफ़ी गहरा प्रभाव पड़ता है। कोई व्यक्ति किसी वाद्य पर आघात करता है तो आघात

NCERT not to be republished

के फलस्वरूप उत्पन्न कंपन हवा के ज़रिये हमारे कर्ण पटों तक आ पहुँचता है और हम उस वाद्य की ध्वनि का रसास्वादन कर पाते हैं।

नाद योग हमारी शारीरिक प्रक्रिया को परिष्कृत करते हुए लय और स्वरबद्ध करता है। नाड़ियाँ अर्थात् वे सूक्ष्म माध्यम जिनसे हमारे शरीर में ऊर्जा का संचार होता है। शरीर में आवाज़ सर्वश्रेष्ठ साज है। जो वोकल कॉर्डस में कंपन से ध्वनि उत्पन्न करता है। कंपन के माध्यम से वीणा, सारंगी, सितार, गिटार, सरोद, हारमोनियम और तबला आदि बाह्य वाद्यों का हम वादन करते हैं। कोई भी व्यक्ति सुर और ताल की तकनीक को तो सीख सकता है, लेकिन इसका मुख्य उद्देश्य होता है आत्मनिरीक्षण और आत्मरूपांतरण, क्योंकि गायन-वादन से कोई व्यक्ति अपना केंद्रीय बिंदु, एकाग्रता एवं चित्त की लीनता की भावना को प्रबल बनाता है।

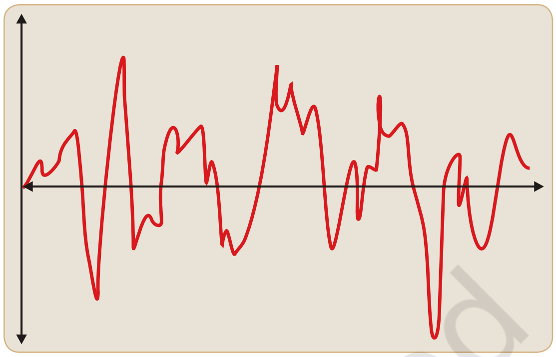

चित्र (र) – ध्वनि कंपन ग्राफ़

चिकित्सा पद्धति के रूप में ध्वनि एवं संगीत

रोग निवारण के लिए ध्वनि और संगीत के उपयोग का सिलसिला मानव सभ्यता के लगभग साथ-साथ ही विकसित हुआ है। इसका लंबा इतिहास है। स्वदेशी एवं प्राकृतिक उपकरणों एवं औषधियों के रूप में मानव की आवाज़, अवनद्ध और घन वाद्य, बाँसुरी तथा आघात एवं घर्षण से बजने वाले अन्य वाद्यों का प्रयोग मस्तिष्क की स्थिति परिवर्तन के लिए करता रहा है। यह अध्ययन हमें यह बताता है कि कुछ निश्चित वादन शैलियाँ मस्तिष्क में थीटा की क्रियाशीलता को बढ़ाती हैं। स्थिति ठीक वैसी होती है जैसी नींद आने के ठीक पहले अथवा नींद खुलने के तुरंत बाद की होती है अर्थात् व्यक्ति न तो पूरी तरह जागृत होता है और न ही पूरी तरह सुप्त। वह तंद्रा अवस्था में होता है। मस्तिष्क की स्वपनावस्था वस्तुत: परिज्ञान और सृजन की अवस्था होती है।

ध्वनियों के नाड़ियों पर पड़ने वाले प्रभाव से यह स्पष्ट होता है कि मस्तिष्क अच्छी ध्वनियों पर उच्च स्तर में अपनी प्रतिक्रिया देता है। पेट (P.E.T.) के अनुसार, शब्द रहित संगीत अथवा ध्वनि जालीदार स्थिति को उत्तेजित करती है और बढ़ाती है, जो सामान्यत: दायीं ओर स्थित अप्रबल अर्धगोलक में होता है।

© NCERT not to be republished

परिशिष्ट 4

दृश्य कला और प्रदर्शन कला पाठ्यक्रम संचालित करने वाले कुछ विश्वविद्यालय

अरुणाचल विश्वविद्यालय, मुख्य परिसर एनएच-52, नमसई, जिला लोहित अरुणाचल प्रदेश 792103 www.arunachaluniversity.ac.in	उस्मानिया विश्वविद्यालय, प्रशासनिक भवन उस्मानिया विश्वविद्यालय परिसर, हैदराबाद आंध्र प्रदेश 500007 www.osmania.ac.in
नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा, बहावलपुर हाउस-1 भगवान दास रोड, नयी दिल्ली 110001 www.nsd.gov.in	अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय ललित कला विभाग, ए.एम.यू., अलीगढ़ www.amu.ac.in
उत्कल यूनिवर्सिटी ऑफ़ कल्चर संस्कृति विहार, भुवनेश्वर, ओडिशा 751009 www.uuc.ac.in	एम.सी.एम. डी.ए.वी. कॉलेज फ़ॉर वूमेन सेक्टर– 36 ए, चंडीगढ़ www.mcmdavcw-chd.edu
कालीकट विश्वविद्यालय मलप्पुरम, केरल 673635 www.universityofcalicut.info	कल्याणी विश्वविद्यालय कल्याणी, नदिया, पश्चिम बंगाल 741235 www.klyuniv.ac.in
इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़, छत्तीसगढ़ 491881 www.iksv.ac.in	कॉलेज ऑफ़ आर्ट्स, दिल्ली विश्वविद्यालय तिलक मार्ग, नयी दिल्ली 110001 www.colart.delhigovt.nic.in
डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद www.bamu.ac.in	दिल्ली विश्वविद्यालय, संगीत और ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 110007 www.du.ac.in
डी.डी.यू. गोरखपुर विश्वविद्यालय सिविल लाइंस, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश 273009 www.ddugorakhpuruniversity.in	पंजाब विश्वविद्यालय सेक्टर 14, चंडीगढ़ 160014 www.puchd.ac.in
मगध विश्वविद्यालय बोधगया, बिहार, 824234 www.magadhuniversity.ac.in	मैसूरु विश्वविद्यालय जे.एल.बी. रोड, मैसूर, कर्नाटक 570005 www.uni-mysore.ac.in

© NCERT not to be republished

नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा नज़रूल कलाक्षेत्र कॉम्प्लेक्स उत्तर बनलपुर, अगरतला, त्रिपुरा 799007 www.tripura.nsd.gov.in	हैदराबाद विश्वविद्यालय सेंट्रल यूनिवर्सिटी रोड, पी.ओ. गचीबोव्ली हैदराबाद, तेलंगाना 500046 www.uohyd.ac.in
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय कला और सौंदर्यशास्त्र विद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली 110067 www.jnu.ac.in	नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा, सिक्किम थिएटर ट्रेनिंग सेंटर, नेपाली साहित्य परिषद भवन विकास क्षेत्र, गंगटोक www.sikkim.nsd.gov.in
छत्रपति साहुजी महाराज विश्वविद्यालय कानपुर, उत्तर प्रदेश www.kanpuruniversity.org	महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र 442001 www.hindivishwa.org
दयालबाग शिक्षण संस्थान दयालबाग, आगरा, उत्तर प्रदेश 282005 www.dei.ac.in	विश्व भारती शांति निकेतन पो.ओ. शांतिनिकेतन, पश्चिम बंगाल, 731235 www.visvabharati.ac.in
राजा मानसिंह तोमर, संगीत और कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश www.rmtmusicandartsuniversity.com	मणिपुर विश्वविद्यालय, भारत-म्यांमार रोड कैनचिपुर, इंफाल, मणिपुर 795003 www.manipuruniv.ac.in
सावित्री बाई फूले, पुणे विश्वविद्यालय गणेश खिडं, पुणे, महाराष्ट्र 411007 www.unipune.ac.in	स्टेला मैरिज कॉलेज 17, कैथेड्रल रोड चेन्नई 600086 www.stellamariscollege.org
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश 221002 www.mgkvp.ac.in	बर्दवान विश्वविद्यालय राजबाती, बर्दवान, पश्चिम बंगाल 713104 www.buruniv.ac.in
एम. एस. यूनिवर्सिटी ऑफ़ बड़ौदा प्रतापगंज, वड़ोदरा गुजरात, 390002 www.msubaroda.ac.in	पांडिचेरी विश्वविद्यालय, प्रदर्शन कला विभाग स्कूल ऑफ़ परफ़ॉर्मिंग आर्ट्स पुडुचेरी 605014 www.pondiuni.edu.in
डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय पालीवाल पार्क, पार्क रोड, आगरा उत्तर प्रदेश 282004 www.dbrau.org.in	महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखंड विश्वविद्यालय पीलीभीत बायपास रोड, बरेली उत्तर प्रदेश 243006 www.mjpru.ac.in

© NCERT not to be republished

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी, उत्तर प्रदेश 221005 www.bhu.ac.in	फर्ग्यूसन कॉलेज, एफ़. सी. रोड पुणे 411004 www.fergusson.edu
बनस्थली विश्वविद्यालय, बनस्थली विद्यापीठ ललित कला बनस्थली, राजस्थान 304022 www.banasthali.org	भारतीदासन विश्वविद्यालय, पल्का लैपेरूर तिरुचिरापल्ली, तमिलनाडु 620024 www.bdu.ac.in
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय दिल्ली रोड, रोहतक हरियाणा 124001 www.mdurohtak.ac.in, www.mdu.ac.in	इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय स्कूल ऑफ़ परफ़ॉर्मिंग एंड विज़ुअल आर्ट्स ब्लॉक बी, अंबेडकर भवन, शैक्षणिक परिसर नयी दिल्ली 110068 www.ignou.ac.in
रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय एमेरल्ड बोवर कैंपस, 56 ए, बी.टी. सड़क, कोलकाता 700050 जोरासंको कैंपस, 6/4, द्वारकानाथ टैगोर लेन, कोलकाता 700007 www.rbu.ac.in	

© NCERT not to be republished

चित्र आभार

संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली – चित्र अ, उ, 1.3, 1.6, 2.3, 2.5, 3.4, 3.5, 4.4, 4.5, 4.6, 4.7, 5.1, 7.1, 7.2, 7.3, 7.10, 7.11, 7.9, 7.13, 7.20, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, न, ण, त, थ, द, ध, फ, भ, ब

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र IGNCA – चित्र आ, इ, 7.5

कला उत्सव, सी आई ई टी, रा.शै.अ.प्र.प. — चित्र इ, ई, औ, 1.1, 1.2, 1.4, 4.2, 7.6, 7.8, 7.12, 7.15, 7.17, 7.18, 7.19, म

शर्बरी बैनर्जी– चित्र ऊ, ऐ, ओ, 2.2, 4.1, 7.4, 7.7, 7.14, 7.16, 7.23, 7.24, 7.25, य

अजय पाठक– चित्र 4.8

अमित मिश्रा – चित्र 2.1, 7.21, 7.23

पं. विजय शंकर मिश्रा– चित्र 7.26, 8.1, न, प, र

प. मोहन शर्मा (कलाकार)– चित्र 2.4

अनुराधा पाल (कलाकार)– चित्र 4.3

https://en.wikipedia.org/wiki/Sambandar Sambandar (Wooden Image), ASI Museum, Vellore – 1.5

क्रियेटिव कॉमन्स ; 1.84, 1.85

https://www.google.com/search?q=images+of+brain+creative+commons&rlz=1C1CHBF_enIN873IN873&tbm=isch&source=iu&ictx=1&fir=85-cbTv8jirbJM%252CPVq_OS4tXeXwqM%252C_&vet=1&usg=AI4_-kS2-aWvZ3sTz6t2262IBIpmOHrcww&sa=X&ved=2ahUKEwj83qawzPPwAhWQ8HMBHe58BIYQ9QF6BAgKEAE#imgrc=85-cbTv8jirbJM

© NCERT not to be republished

टिप्पणी

© NCERT
not to be republished

संगीत

तबला एवं पखावज

हमारे अवनद्ध वाद्य

कक्षा 11 के लिए संगीत की पाठ्यपुस्तक

© NCERT not to be republished

11153

विद्यया ऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

11153 – संगीत – तबला एवं पखावज – हमारे अवनद्ध वाद्य
कक्षा 11 के लिए संगीत की पाठ्यपुस्तक

ISBN 978-93-91444-22-8

प्रथम संस्करण
जुलाई 2021 श्रावण 1943
पुनर्मुद्रण
जनवरी 2025 पौष 1946

PD 2T M

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2021

₹ 200.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा पुष्पक प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, 203-204, डी.एस.आई.डी.सी. कॉम्प्लेक्स, ओखला, इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-1, नई दिल्ली-110020 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी., प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली 110 016 Phone : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 Phone : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 Phone : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप
पनिहटी
कोलकाता 700 114 Phone : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 Phone : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *एम.वी. श्रीनिवासन*
मुख्य संपादक : *बिज्ञान सुतार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी) : *जहान लाल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *अमिताभ कुमार*
संपादन सहायक : ऋषिपाल सिंह
सहायक उत्पादन अधिकारी : *सायुराज ए.आर.*

आवरण एवं सज्जा
बैनियन ट्री

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में, प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा (ई.सी.सी.ई.) से माध्यमिक शिक्षा और शिक्षक-शिक्षा के विभिन्न चरणों में, विस्तार से वर्णित है कि संगीत, कला एवं शिल्पकला विषयों पर विशेष बल दिया जाए। शिक्षा, विद्यार्थियों के जीवन के सभी पक्षों और क्षमताओं का संतुलित विकास करे तथा यह विचार करते हुए कि उम्र के प्रत्येक पड़ाव पर विद्यार्थियों के लिए क्या रुचिपूर्ण है और क्या नहीं, इसके लिए स्कूल के पूरे पाठ्यक्रम में संगीत, कला एवं शिल्प का समावेश अवश्य ही किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आगे इस बात पर भी प्रकाश डालती है कि विद्यार्थियों को, विशेष रूप से माध्यमिक विद्यालय में अध्ययन करने के लिए, अधिक लचीलापन और विषयों को चुनने के विकल्प दिए जाएँगे। इनमें कला और शिल्प भी शामिल होंगे।

संगीत, कला एवं शिल्प आदि विषयों का चयन जहाँ तक संभव हो भारतीय और स्थानीय भौगोलिक संदर्भों के आधार पर किया जाएगा। मानविकी और कला की माँग बढ़ेगी, क्योंकि भारत एक विकसित देश बनने के साथ-साथ दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनने की ओर भी अग्रसर है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में, बहुभाषावाद और भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत सीखने पर विशेष बल दिया गया है। संस्कृत ग्रंथों में संगीत के विशाल भंडार पाए जाते हैं। भारतीय संगीत के गहन अध्ययन से भाषा के साथ-साथ संगीत की सामग्री को भी जानने का मार्ग प्रशस्त होगा।

विशेष प्रतिभा वाले और मेधावी विद्यार्थियों की सहायता हेतु म्यूज़िक परफ़ॉर्मेंस सर्कल, लैंग्वेज सर्कल, ड्रामा सर्कल इत्यादि स्कूल, ज़िलों और उससे आगे के स्तरों पर समर्थित किए जाएँगे। यह पाठ्यपुस्तक स्कूली शिक्षा के दौरान बच्चों के मूल्य संवर्धन हेतु उपर्युक्त लक्ष्यों के संदर्भ में प्रासंगिक है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्पष्ट करती है कि कला शिक्षा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाने के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों एवं शिक्षक शिक्षा संस्थानों में संगीत के पाठ्यक्रम को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में तबला एवं पखावज के शिक्षक, विद्यार्थियों का ज्ञानवर्द्धन कर रहे हैं। आज तबला एवं पखावज जैसे अवनद्ध वाद्यों को बहुत-से लोग आजीविका के रूप में अपना रहे हैं। विदेशों में भी इन वाद्यों को प्रसिद्धि प्राप्त है एवं इन पर क्रमश: ज्ञानवर्द्धन हो रहा है।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में अवनद्ध वाद्यों के इतिहास, इनकी बनावट, वादन शैली तथा कलाकार आदि सभी विषयों पर विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त जानकारी प्रदान की गई है। उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यपुस्तक, *संगीत— तबला एवं पखावज— हमारे अवनद्ध वाद्य* प्रकाशित की जा रही है, जो विद्यार्थियों को तबला एवं पखावज के उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए प्रेरित करेगी। तबला, पखावज या अन्य अवनद्ध वाद्यों में रुचि रखने वाले कला प्रेमियों के लिए यह पाठ्यपुस्तक लाभप्रद सिद्ध होगी। पाठ्यपुस्तक की गुणवत्ता और सुधार के लिए रा.शै.अ.प्र.प. वचनबद्ध है और सुझावों और टिप्पणियों का स्वागत करती है जो भविष्य में पुस्तक के संशोधन और परिष्करण में हमारी सहायता करेंगे। आशा करता हूँ कि इस पाठ्यपुस्तक को विद्यार्थी ध्यान से पढ़ेंगे और विषय-वस्तु का लाभ उठाएँगे।

श्रीधर श्रीवास्तव
निदेशक (प्रभारी)
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
नवंबर 2020

© NCERT not to be republished

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1][**संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य**] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2][**राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

© NCERT not to be republished

प्राक्कथन

प्यारे बच्चो!

ललित कलाओं में संगीत का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संगीत ने न केवल भारत में बल्कि विश्व में अपनी उत्कृष्ट पहचान बनाई है। मानव जीवन के विभिन्न सरोकारों से जुड़े होने और अपनी आध्यात्मिक ऊँचाइयों के कारण भारतीय संगीत को विश्वव्यापी लोकप्रियता और सम्मान मिला है। दुनियाभर के संगीतकारों ने इसकी श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। मौसम तथा अवसर चाहे कोई भी हो, संगीत ने अपने सुरों से हमेशा समारोह के आकर्षण को बढ़ाया है। सभी उपासना पद्धतियों में अपने देवता की आराधना के लिए संगीत के स्वर और लय का प्रयोग किया जाता है। संगीत से मन को एकाग्रचित्त करने में सहायता मिलती है। इसी कारण प्रात:काल संगीत के माध्यम से दिन की शुरुआत करने पर मन शांत, आनंदमय एवं उत्साहित रहता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारे समाज में संगीत एक आवश्यक तत्व के रूप में विद्यमान रहता है। संगीत की इन्हीं भावनाओं के असीम आकाश में अठखेलियाँ करते स्वरों को अनुशासित और लयबद्ध करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का आविष्कार और निर्माण प्राचीन काल से होता रहा है।

भूदुन्दुभी, दुन्दुभी, आडंबर, पुष्कर, नक्कारा, दुक्कड़, खोल, ढोल, घटम्, मृदंगम्, पुंग, नाल, पखावज और तबला आदि अवनद्ध वाद्यों ने समय-समय पर संगीत को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनका दायरा लोकसंगीत से लेकर शास्त्रीय संगीत तक फैला है। कालांतर में अवनद्ध वाद्यों की सृजनात्मकता का और अधिक विस्तार हुआ है। लय तथा ताल दिखाने के साथ-साथ गीत के शब्दों और भावों के अर्थ को भी विभिन्न 'टुकड़ों' एवं 'बोलों' द्वारा और अधिक मुखरित किया गया है। इस भूमिका के कारण सांगीतिक प्रस्तुतियाँ बेहतर सुनाई देने लगी हैं। विभिन्न प्रकार की गायन शैलियों के लिए अलग-अलग अवनद्ध वाद्यों का निर्माण हुआ है। यदि उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की बात करें तो तबला एवं पखावज आज सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य हैं। परंपरागत रूप से देवालयों में मृदंग या पखावज का प्रयोग होता रहा है, लेकिन बदलते समय के साथ अवनद्ध वाद्यों ने अपना स्थान राजदरबारों, महफ़िलों एवं संगीत के महत्वपूर्ण मंचों पर बनाया है। वीणा के विभिन्न प्रकारों की संगति के लिए मृदंगम् का प्रयोग व्यापक रूप से होता रहा है, लेकिन आज भक्ति संगीत के साथ-साथ ध्रुपद, धमार, सितार, सरोद, सुरबहार, कथक नृत्य इत्यादि के साथ संबंधित होकर पखावज अपनी क्षमता का परिचय दे रहा है। इसके विपरीत तबला ने मुगलकाल से अपनी यात्रा शुरू की थी। लेकिन शनै:-शनै: अपने रूप को निखारते और सँवारते हुए आज स्वयं को इतना सक्षम और सबल बना लिया है कि शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम, लोक और फ़िल्म संगीत सभी के साथ न केवल कदम से कदम मिलाकर चल रहा है, बल्कि उन्हें समृद्ध भी बना रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तबला एकल वादन परंपरा का प्रारंभ हुआ। अपने निजी नाद सौंदर्य और लयात्मकता के अनूठे प्रयोगों के कारण तबले का एकल वादन श्रुति मधुर एवं जनप्रिय है। वर्तमान में तबला वादक संगीत के प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

हमारे जीवन के बहुत से क्रियाकलाप लय से जुड़े हुए हैं। जब आप साँस लेते हैं तो क्या उसमें कुछ लयात्मक होता है? सोचो और विचार करो... क्या आगे दी गई क्रियाओं में आपको लय दिखती है?

© NCERT not to be republished

जैसे— बात करना, चलना, अपने हाथ-पैर को हिलाना, कोई भी वाहन चलाना, एक पक्षी का आकाश में उड़ना, रेलगाड़ी का चलना, सूर्य का अपनी धुरी पर घूमना एवं पृथ्वी का उसके चारों ओर चक्कर लगाना, पेड़-पौधों का झूमना इत्यादि।

अगर इन सब पर भली-भाँति सोच-विचार करें तो यह समझ में आएगा कि लय का हर जगह समावेश है अर्थात् लय महत्वपूर्ण है। दिल पर हाथ रखो तो धक-धक की आवाज़ सुनाई देती है। दिल की धड़कन जब असंतुलित हो जाती है, तब हम बीमार पड़ सकते हैं। लय ही ज़िंदगी को स्वस्थ और गतिशील बनाए रखती है।

इसी लय को मनुष्य ने समझा और उस पर गहन शोध किए, चाहे वह कला हो या विज्ञान, लय की महत्ता हर क्षण महसूस की गई है। प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक तबला एवं पखावज के सैद्धांतिक पक्ष के विचार-विमर्श के लिए बनाई गई है। यह पुस्तक उसी लय की कहानी को बताती है, जो हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण तत्व है। संगीत को मनीषियों ने लय में बाँधकर एवं उसकी विभिन्न तारतम्यता को जाँचकर, अनेक वाद्य यंत्रों की रचना की तथा उस पर विभिन्न लय विन्यासों का अभ्यास किया।

आप सभी गीत सुनते हैं तो सर्वप्रथम लय ही आपको आकर्षित करती है। तभी तो ढोल, ढोलक, नगाड़ा, तबला, ड्रम इत्यादि की लय से खुश होकर आप नृत्य करते हैं।

अवनद्ध वाद्य का कोई भी प्रकार लय को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। यही लय जब यथाक्रम बाँध दी जाती है तो अनेक प्रकार के ताल बनते हैं, जैसे— कहरवा, दादरा, तीनताल, एकताल, चौताल इत्यादि। विभिन्न तरह की रचनाओं के लिए इन तालों का व्यवहार सुनने को मिलता है। अवनद्ध वाद्य भी कई प्रकार के होते हैं, जैसे— ढोल, ढोलक, तबला, पखावज, खोल, मृदंगम्, खरताल, कंजीरा इत्यादि। साधारण लोगों ने इसे बनाया एवं क्रमश: परिष्कृत किया। वर्तमान युग में इन वाद्यों में बजाए जाने वाले लय-ताल इतने लोकप्रिय हैं कि इनके बिना संगीत की कल्पना नहीं की जा सकती है।

तबला एवं पखावज वाद्य सृष्टि एवं सृजन कला का महत्वपूर्ण अंग हैं, इसलिए इन वाद्यों के अध्ययन पर यह पाठ्यपुस्तक बनाई गई है। अपने चारों ओर दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट होता है कि यह दो वाद्य बहुत प्रसिद्ध हैं तथा कई दशकों से विशेषज्ञों ने कठिन परिश्रम से इन्हें सजाया, सँवारा है और इन पर शोध किए हैं। उपरोक्त बातों को आप जैसे बच्चों तक पहुँचाना हमारा कर्तव्य है। अत: कुछ विशेष प्रसंगों को चुनकर आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस पाठ्यपुस्तक में संगीत का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। कुछ सांगीतिक परिभाषाएँ, जो शास्त्रीय संगीत के आधार तत्व हैं, उनका भी परिचय दिया गया है। इसके उपरांत तबला एवं पखावज का सचित्र वर्णन, उनकी उत्पत्ति एवं विकास, वाद्यों का वर्गीकरण, कुछ अवनद्ध वाद्यों का वर्णन, इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का वर्णन, तबला एवं पखावज के वर्णों का विवरण एवं वादन विधि, कुछ तालों के ठेके लिखने की पद्धति, भातखंडे ताल लिपि पद्धति, तबला एवं पखावज के कतिपय घरानों का उल्लेख, तबला एवं पखावज के महान कलाकारों एवं संगीतज्ञों के योगदान, इन सभी विषयों पर विस्तृत चर्चा की गई है। आप सभी वाद्यों को बजाना सीखें एवं इस पाठ्यपुस्तक के अध्यायों को पढ़कर अपना ज्ञानवर्द्धन करें। यह पाठ्यपुस्तक उच्च माध्यमिक स्तर पर उन बच्चों की दक्षताओं को बढ़ाने के लिए है, जो अवनद्ध वाद्य-वादन सीख रहे हैं।

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

इन वाद्यों को सीखने के प्रतिफल—

- अवनद्ध वाद्यों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास के बारे में जानना।
- तबला एवं पखावज की मुख्य विशेषताओं को विस्तार से समझना।
- अवनद्ध वाद्यों — तबला एवं पखावज के मूल बोलों को पहचानना।
- तबला एवं पखावज की वादन विधि या प्रविधि को जानना।
- अवनद्ध वाद्यों के ताल, स्वरूपों व प्रकारों को लिपिबद्ध करना।
- अवनद्ध वाद्यों के विकास में सहायक तबला एवं पखावज के प्रसिद्ध कलाकारों एवं उनके घरानों के बारे में विस्तार से जानना

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा पहली बार तबला एवं पखावज पर पाठ्यपुस्तक बनाई गई है। हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक आपको पसंद आएगी। आप पाठ्यपुस्तक में सुधार हेतु अपने महत्वपूर्ण सुझाव हमें अवश्य प्रेषित करें ताकि दूसरे संस्करण में इस पाठ्यपुस्तक को और भी समृद्ध बनाया जा सके।

शर्बरी बैनर्जी
सहायक प्रोफ़ेसर
कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

© NCERT not to be republished

Reprint 2025-26

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य - भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

मुख्य सलाहकार

मुकुन्द नारायण भाले, *प्रोफ़ेसर* एवं *अध्यक्ष* (सेवानिवृत्त), इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, छत्तीसगढ़

सदस्य

अनुपम महाजन, *प्रोफ़ेसर*, *भूतपूर्व अधिष्ठात्री* एवं *विभागाध्यक्ष*, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अमित कुमार वर्मा, *सहायक प्रोफ़ेसर*, विश्वभारती शांति निकेतन विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल

प्रज्ञा वर्मा, *उपसचिव*, सी.बी.एस.ई., प्रयागराज

मधु बाला सक्सेना, *प्रोफ़ेसर* (सेवानिवृत्त), संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, *पूर्व विभागाध्यक्ष,* संगीत एवं नृत्य विभाग, *अधिष्ठात्री*, प्राच्य विद्या संकाय, *कार्यकारी कुलपति,* कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

विजय शंकर मिश्र, *संगीत लेखक* एवं *निदेशक*, सोसाइटी फ़ॉर एक्शन थ्रू म्यूज़िक (सम), नयी दिल्ली

सचिन सागर, *संगीत लेखक*, उत्तर प्रदेश

सदस्य समन्वयक

शर्बरी बैनर्जी, *सहायक प्रोफ़ेसर*, कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में सहयोग के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् विभिन्न संस्थाओं, विषय-विशेषज्ञों, शिक्षकों एवं विभागीय सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

परिषद्, कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग की *विभागाध्यक्ष* पवन सुधीर *(प्रोफ़ेसर)* एवं ज्योत्सना तिवारी *(प्रोफ़ेसर)* के प्रति कृतज्ञ है, जिन्होंने मूल्यवान समय और सहयोग प्रदान कर इस पुस्तक को उपयोगी बनाने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

परिषद्, श्वेता उप्पल, *(मुख्य संपादक)* प्रकाशन प्रभाग की भी बहुत अभारी है जिन्होंने इस पुस्तक को बेहतर बनाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

परिषद्, इस पुस्तक की रचना के लिए पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद्, इस पुस्तक के डिज़ाइन के लिए श्वेता राव को आभार व्यक्त करती है।

परिषद्, संगीत नाटक अकादमी के सदस्यों, रीता स्वामी, *(सचिव)* जयंत चौधरी एवं प्रीत पाल (फ़ोटो सेक्शन) के प्रति आभारी है, जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में सहयोग प्रदान किया।

इसके साथ ही परिषद्, अजय पाठक *(सहायक प्रोफ़ेसर)*, दिल्ली विश्वविद्यालय, अमित मिश्र *(सहायक प्रोफ़ेसर,* विश्वभारती, शान्तिनिकेतन), विजय शंकर मिश्र *(लेखक)* मोहन श्याम शर्मा एवं अनुराधा पाल (संगीत कलाकार) का भी आभार प्रकट करती है, जिन्होने तस्वीरें देकर इस पुस्तक को अमूल्य बनाया।

परिषद्, पुस्तक के विकास के विभिन्न चरणों में सहयोग के लिए कला एवं सौंदर्यबोध शिक्षा विभाग के अक्षया अनन्तकृष्णन और शिखा श्रीवास्तव *(जे.पी.एफ.)*, संजीद अहमद *(डी.टी.पी. ऑपरेटर)*, फात्मा नासिर *(ग्राफ़िक डिज़ाइनर)* एवं काजल कुमारी *(टाइपिस्ट)* के प्रति आभार प्रकट करती है।

इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कई शिक्षकों ने भी अपना अमूल्य योगदान दिया। परिषद् उन सभी के प्रति अपना आभार प्रकट करती है। प्रो. मनीकन्दन (संगीत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय), मिलन देव (*अध्यापक*– महाराष्ट्र), मोनिका दादू (*अध्यापिका*– दिल्ली), मुकेश कुमार, (*अध्यापक*–केंद्रीय विद्यालय, मेरठ), नीरा चौधरी (*प्रोफ़ेसर,* पटना विश्वविद्यालय) और श्रुति अधिकारी, (*अध्यापक*, डीएमएस, भोपाल) के नाम उल्लेखनीय हैं।

परिषद्, इस पुस्तक के संपादन के लिए मीनाक्षी, *सहायक संपादक* (संविदा) और कहकशा, *सहायक संपादक* (फ्रीलांसर) और नरेश कुमार *(डी.टी.पी. ऑपरेटर),* प्रकाशन प्रभाग का आभार व्यक्त करती है। आवरण एवं सज्जा प्रकाशन कार्य में सक्रिय सहयोग के लिए प्रकाशन प्रभाग, रा.शै.अ.प्र.प. का सहयोग प्रशंसनीय है।

© NCERT not to be republished

भूमिका

भारतीय संगीत का ऐतिहासिक अवलोकन

चित्र (अ) – संगीत प्रस्तुत करते हुए राजस्थान के लांगा मांगणियर जाति के लोग

भारतीय संगीत के ऐतिहासिक अवलोकन के लिए सर्वप्रथम मानव की उत्पत्ति और इस सृष्टि में व्याप्त उन तत्वों, जैसे— ध्वनि, स्वर, लय आदि पर ध्यान देना होगा, जिनके कारण यह सृष्टि गतिमान है। मानव को ध्वनि एवं लय का एहसास सर्वप्रथम दिल की धड़कन सुनकर एवं इसके पश्चात् पत्तों की सरसराहट, मेघों की गर्जना, वर्षा की बूँदों, झरनों से गिरते पानी के निनाद, पक्षियों के कलरव, पशु-पक्षियों की आवाज़ आदि से हुआ होगा। स्वाभाविक है कि इन प्राकृतिक घटनाओं में छिपी ध्वनि एवं लय ने सर्वप्रथम मनुष्य का ध्यान आकर्षित किया हो। मनुष्य के विविध भाव, जैसे— प्रसन्नता, दु:ख, हठ, आक्रोश, शौर्य, ललकार आदि भी मनुष्य के हृदय से स्वभावत: लय, छंद एवं ध्वनि के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। जिन विविध भावों का मानव ने क्रमश: अनुभव किया, उन रसात्मक अनुभूतियों को ध्वनि एवं लयबद्ध कर अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया क्रमश: संगीत बनी। संगीत से अभिप्राय है— 'कर्णप्रिय ध्वनि'। यही संगीत क्रमश: मानव जीवन का अभिन्न अंग बन गया। जब मानव ने समूह में रहना प्रारंभ किया होगा, तब भाषाएँ विकसित हुई होंगी। संवाद हाव-भाव एवं कंठध्वनि के विविध प्रयोगों से भी संभव है, परंतु भाषा बौद्धिक ज्ञान एवं शब्दों के अर्थ पर निर्भर करती है। यह मानना पड़ेगा कि संगीत भावानुभूति पर निर्भर करता है। इसीलिए यह कहना भी गलत न होगा कि मानव जीवन में पहले संगीत ने अपना स्थान बनाया तत्पश्चात् भाषा ने अपनी जगह बनाई। इसके पश्चात् भाषा का रसात्मक प्रयोग करके संगीत में ढाला गया, जिसका परिष्कृत रूप आज विभिन्न संगीत शैलियों के रूप में प्रचलित है।

संगीत की उत्पत्ति

संगीत की उत्पत्ति के संदर्भ में अनेक मत-मतांतर होने पर भी एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि गान की सहज प्रवृत्ति होने के कारण, गुनगुनाना, सार्थक शब्दों को किसी धुन या किसी लय के आश्रय से गाना, किसी धातु या तंतु को वाद्य के रूप में बजाना, मुख मुद्रा, हस्त मुद्रा या पद संचालन से नृत्य के रूप में भावों को अभिव्यक्त करते हुए हाव-भाव का प्रयोग करना आदि से ही विकसित प्रयोगों को संगीत की उत्पत्ति का मूलाधार कहा जा सकता है।

संगीत की उत्पत्ति के संबंध में कुछ किंवदंतियाँ भी प्रचलित हैं, जैसे— संगीत का जन्म (ॐ) 'ओउम्' शब्द से हुआ। ओउम् शब्द के तीन अक्षर 'अ' 'उ' तथा 'म' ब्रह्मा, विष्णु व महेश के रूप में ईश्वरीय

© NCERT not to be republished

चित्र (आ) – मणिपुर का थांग्ता नृत्य

शक्ति के द्योतक हैं। ओम् परमेश्वर की सर्वोत्तम संज्ञा है। 'ओम्' के उच्चारण के फलस्वरूप नाद, नाद से श्रुति व स्वर और स्वर से ही संगीत की उत्पत्ति हुई है। एक कथा के अनुसार, हज़रत मूसा को एक पत्थर प्राप्त होने का उल्लेख है, जिस पर पानी की धार पड़ने से उसके सात टुकड़े हो गए और पानी की सात धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। उन धाराओं से सात ध्वनियाँ निकलीं, यही सात ध्वनियाँ संगीत के सात स्वरों के रूप में प्रचलित हुईं।

प्रथम या द्वितीय शताब्दी में भारतीय संगीत पर लिखे गए *नारदीय शिक्षा* ग्रंथ के रचयिता नारद का मत है कि पशु-पक्षियों की ध्वनि ने ही सात स्वरों को जन्म दिया है। जिस प्रकार ईंट, पत्थर आदि से एक भवन निर्मित होता है, पत्थरों को तराश कर मूर्ति बनाई जाती है, विभिन्न रंगों के मिश्रण से चित्र बनता है, उसी प्रकार षड्ज, ऋषभ, गंधार आदि सप्त स्वरों तथा विलंबित, मध्य व द्रुत आदि लयों के सम्मिश्रण से संगीत विभिन्न रागों, बंदिशों, गीतों व धुनों आदि के रूप में विशेष आकार ग्रहण करता है। सभी रचनाएँ विभिन्न विचारों को व्यक्त करते हुए रस व आनंद की अनुभूति कराती हैं।

चित्र (इ) – तमिलनाडु का लोक नृत्य

संगीत से गायन, वादन व नृत्य, तीनों का बोध होता है। 'गायन' का संबंध कंठ संगीत से है, जबकि 'वादन' का तात्पर्य विभिन्न वाद्यों के माध्यम से प्राप्त ध्वनि से है। हस्त मुद्रा, पद संचालन तथा अभिनय से युक्त अभिव्यक्ति 'नृत्य' से संबंध रखती है। मानव को उल्लसित करने वाला संगीत न केवल मस्तिष्क पर सीधे सकारात्मक प्रभाव डालता है, बल्कि संगीत से अनेक मानसिक रोगों का उपचार किए जाने के दृष्टांत भी हमारे साहित्य में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं। आधुनिक काल में संगीत चिकित्सा पर विशेष शोध कार्य चल रहे हैं। पशु-पक्षी व पेड़-पौधों पर भी संगीत के प्रभाव के सार्थक परिणाम अंकित किए गए हैं।

ईसा के जन्म से पूर्व भी भारतीय संगीत उन्नत अवस्था में था, जिसका प्रमाण सिंधु घाटी की खुदाई से प्राप्त होने वाले अवशेषों से मिलता है। सात छिद्र वाली वंशी, विभिन्न प्रकार की वीणाएँ, मृदंग तथा अन्य प्रकार के अवनद्ध वाद्य एवं करताल बजाते हुए नर्तकियों की पूर्ण या खंडित मूर्तियाँ तत्कालीन संगीत अभिरुचि और उसकी उन्नत अवस्था का परिचय देती हैं। बौद्धकालीन जातक कथाओं में भारतीय संगीत और अनेक प्रकार के वाद्यों की तत्कालीन स्थिति से संबंधित उल्लेख प्राप्त होते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में संगीत को गांधर्व की संज्ञा देते हुए कहा गया है—

"अनादि सम्प्रदायं यद् गान्धर्वैः सम्प्रयुज्यते
नियतं श्रेयसो हेतुर्त द्गन्धर्व प्रचक्षते"

— पं.रामामान्य स्वमेल क्लानिधि

अर्थात् जो अनादि है, इसे कब व कैसे उत्पन्न किया गया, यह नहीं कहा जा सकता है, परंतु जिसका प्रयोग गंधर्वों द्वारा किया गया, जो नियमबद्ध व श्रेयस अर्थात् आत्मिक उन्नति का साधन है, उसे ही 'गांधर्व' कहा गया है। गंधर्वों द्वारा प्रयुक्त किए जाने के कारण ही संभवतः संगीत को 'गांधर्व' संज्ञा दी गई है।

सामवेद

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो वेदकालीन सभ्यता में सामवेद का गान किए जाने के लिखित साक्ष्य मिलते हैं, जिसके साथ अनेक वाद्यों का वादन भी किया जाता था। *ऋग्वेद* की ऋचाओं में से गेय ऋचाओं के संकलन के फलस्वरूप *सामवेद* की रचना हुई है। *ऋग्वेद* की ऋचाओं के पाठ्य स्वरूप की अपेक्षा जब उनका 'साम' स्वरों सहित विधिपूर्वक गान किया जाता था तो काव्य व संगीत के समन्वय से वे ऋचाएँ ईश्वर आराधना के लिए अधिक प्रभावशाली हो जाती थीं। ऐसी ही ऋचाओं का संकलन है — *साम संहिता*।

वैदिक काल में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित— ये तीन स्वर सर्वप्रथम प्रचलन में थे; इसके बाद क्रमशः तीन से पाँच व पाँच से सात स्वरों का विकास हुआ।

इस प्रकार गेय स्वरूप का विकास होता रहा और भिन्न-भिन्न नाम व संज्ञा से इन स्वरों का तथा सप्तक आदि का विकास होता चला गया। सामगान अधिकतर विभिन्न धार्मिक कार्यों को संपन्न किए जाने वाले यज्ञ आदि के अवसर पर पंडितों या पुरोहितों द्वारा गाया जाता था, जिन्हें 'ऋत्विज' कहा जाता था। साम के प्रमुख तीन ऋत्विज गायक होते थे— प्रस्तोता, उद्‌गाता, प्रतिहर्ता। मुख्य गायक उद्‌गाता होता था और प्रस्तोता व प्रतिहर्ता उसके सहायक होते थे।

प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने पर एक और बात ज्ञात होती है कि प्रारंभ से ही संगीत की दो धाराएँ साथ-साथ चलती रही हैं, जिन्हें 'मार्ग व देशी' कहा गया है। दामोदर पंडित कृत संगीत दर्पण के अनुसार—

"गीतं वाद्यं नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते
मार्ग-देशी विभागेन संगीतं द्विविधम् मतम्।।"

अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य तीनों को संगीत कहा जाता है। संगीत दो प्रकार का माना गया है— मार्ग और देशी। मार्ग संगीत, नियमबद्ध और अपरिवर्तनीय था। देशी संगीत में नियमों की अपेक्षाकृत शिथिलता

© NCERT not to be republished

थी और लोक रुचि के अनुरूप होने से इसमें परिवर्तन की गुंजाइश भी रहती थी। देशी को परिभाषित करते हुए *संगीत रत्नाकर* में कहा गया है—

"देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम्गी
तं वादनं च नृत्तं तद्देशी त्यभिधीयते।"

अर्थात् अलग-अलग प्रांतों में लोगों की रुचि के अनुसार जो मनुष्य के हृदय को आनन्दित करता गीत, वाद्य और नृत्य होता है, उसे देशी कहा जाता है।

चित्र (ई) – महाराष्ट्र का लोक नृत्य

इस प्रकार हर काल और हर समाज में नियमबद्ध और परिवर्तनीय, इन दोनों प्रकार का संगीत प्रचार में रहा है।

पौराणिक कहानियों में गंधर्व, किन्नर, यक्ष, अप्सरा आदि संगीत से जुड़ी अनेक प्रकार की जातियों का उल्लेख मिलता है, जिनका कार्य संगीत की आराधना व प्रदर्शन करना था। *रामायण* एवं *महाभारत* आदि महाकाव्यों में अनेक सांगीतिक तत्वों का उल्लेख मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय संगीत अत्यंत प्राचीन काल से ही न केवल प्रचार में था, अपितु उसका एक विशिष्ट शास्त्र भी था।

रामायण और महाभारत काल में संगीत के अनेक संदर्भ प्राप्त होते हैं। बाल्मीकि रचित *रामायण* में, श्रीराम व सीता के पुत्र लव-कुश द्वारा राजा राम के समक्ष रामकथा का गान करने का उल्लेख मिलता है।

महाभारत में भी धनुर्धारी अर्जुन द्वारा राजा विराट की पुत्री उत्तरा को संगीत और नृत्य की शिक्षा प्रदान करने का और स्वयं अर्जुन द्वारा मृदंग वादन से संगति करने का उल्लेख मिलता है।

लगभग दूसरी शताब्दी में रचित *नाट्यशास्त्र* में भरतमुनि ने जिस विस्तार के साथ संगीत की चर्चा की है, उससे यह सिद्ध होता है कि विश्व की अन्य सभ्यताओं से भी बहुत पहले भारतीय संगीत नियमबद्ध होकर जनमानस में प्रचलित था। हमारे ग्रंथों में दिए गए संदर्भ इस बात को प्रमाणित करते हैं।

भरतमुनि कृत *नाट्यशास्त्र* प्राचीन काल के उपलब्ध ग्रंथों में से एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। नाटक या नाट्यकला के संदर्भ में गायन, वादन व नृत्य की प्रधानता के कारण इसे पंचम वेद या 'नाट्यवेद' भी कहा गया है। संगीत की विस्तृत चर्चा के कारण इसे 'गांधर्ववेद' की भी संज्ञा दी गई।

Reprint 2025-26

कालांतर में राजा समुद्रगुप्त (गुप्त काल 300 ई.– 600 ई.) की वीणावादक के रूप में चित्रित मुद्रा यह भी सिद्ध करती है कि उस काल में संगीत को केवल राज्याश्रय ही प्राप्त नहीं था, अपितु तत्कालीन शासक स्वयं भी संगीत की शिक्षा ग्रहण करते थे। गुप्त काल में ऐसा माना जाता है कि भारतीय साहित्य, संस्कृति, शिल्पकला और संगीत का बहुत विकास हुआ। महाकवि कालिदास की रचनाओं में भी संगीत संबंधी अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। सम्राट हर्षवर्धन स्वयं एक उत्कृष्ट गायक थे और उनके दरबार में नृत्य, गीत व संगीत के उत्कृष्ट प्रयोग व प्रदर्शन होते थे। हर्षवर्धन की बहन राजश्री भी संगीत में निपुण थीं।

चित्र (उ) – छत्तीसगढ़ का लोक नृत्य

मतंग मुनि द्वारा रचित *बृहद्देशी* जो लगभग सातवीं सदी की रचना है, संगीत के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है।

मध्यकाल में संगीत के विकास के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। परिवर्तन मानव प्रकृति और सृष्टि का गुण है, इसीलिए संगीत के स्वरूप भी निरंतर परिवर्तित होते रहे। शारंगदेव कृत *संगीत रत्नाकर* में (तेरहवीं शताब्दी) मार्ग व देशी, दोनों प्रकार के संगीत की अवधारणा स्पष्ट की गई है। इस काल में पूर्व प्रचलित ग्राम, मूर्च्छना पद्धति पर आधारित जाति गायन के दस लक्षणों के आधार पर विकसित राग गायन का आविर्भाव हुआ। जाति गायन से धीरे-धीरे प्रबंध गेय विधा का उद्भव हुआ।

संगीत रत्नाकर में अनेक विद्वानों का उल्लेख किया गया है, जैसे— सदाशिव, दुर्गशक्ति, भरत, कश्यप, मतंग, कोहल, दत्तिल, नान्यदेव, भोजराज आदि। इन विद्वानों ने तेरहवीं शताब्दी तक संगीत की परंपरा को आगे बढ़ाया।

प्राचीन तमिल संगीत

प्राचीन काल से ही हमारे देश में संगीत का विकास निरंतर होता रहा, कई पड़ाव आए, राजनैतिक बदलाव एवं समय के साथ-साथ मनुष्य की रुचि में कई परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। सभी प्रकार के बदलाव व परिस्थितियों के बावजूद संगीतज्ञों के प्रयास से संगीत उन्नति की

चित्र (ऊ) – अवनद्ध वाद्य का प्रारंभ

Reprint 2025-26

सीढ़ी पर धीरे-धीरे अग्रसर होता रहा। दक्षिण भारत में तीसरी सदी ईसा पूर्व से संगीत की एक और शैली का विकास हुआ, जिसे 'तमिल संगीत' के नाम से जाना जाता है। तमिल संगीत का उद्भव अगस्त्य मुनि एवं उनके शिष्य तोल्काप्पियर (*तोल्काप्पियम* के रचयिता) के काल से माना जाता है। *तोल्काप्पियम* दक्षिण भारत के संगीत एवं साहित्य के निरूपण करने का एक अनन्यतम् ग्रंथ है। द्रविड़ परंपरा में चेर, चोल, पाण्डय, पल्लव, सातवाहन आदि प्रसिद्ध समुदाय थे, जिनका निवास स्थान विंध्य पर्वत का निचला हिस्सा था। इन समुदायों की भाषा में काफ़ी समानता थी। सभी समुदायों की भिन्न सत्ता थी, लेकिन इनका साहित्य, कला एवं शिक्षा के लिए 'संगम' नाम की बुद्धिजीवी गोष्ठी थी। ऊपर दिए गए सभी समुदाय के विशिष्ट व्यक्ति 'संगम' के सदस्य होते थे।

इस काल में संगीत, नृत्य एवं कलाओं में निम्नलिखित ग्रंथों की रचना हुई, *अइन्कुरूनूरू*, *अकनानूरू*, *पुरनानूरू*, *कलित्तोगइ*, *कुरून्तोगइ*, *नट्रीनइ*, *परिपाडल*, *पत्तिट्रपाट्टु*।

महाकाव्य— जैसे— *चिलप्पदिगारम*, *मणिमेखलइ*, *सीवक चिन्तामणि*।

सांगीतिक ग्रंथ— जैसे— *पञ्चमरबु*।

'पण' संगीत का मुख्य स्केल या सप्तक था और 'तिरम' गौण समूह माना जाता था। संगीत के स्केल या सप्तकों के नाम, उनके उद्भव स्थल के अनुसार नामकरण किए गए थे, जैसे—

- *मुल्लई पण* (पर्वत क्षेत्र से)
- *नेईथल पण* (समुद्री क्षेत्र से)
- *कुरीन्जी पण* (वन क्षेत्र से)
- *मरुदम पण* (हरे-भरे क्षेत्र से)
- *पालई पण* (रेगिस्तान क्षेत्र से)

संगीत के स्वर 'हिंदुस्तानी संगीत' के अनुकूल थे, लेकिन उनके नाम भिन्न थे। कुरल, तुत्तम, कइक्किलइ, उलइ, इली, विलरि और तारम, संगीत को 'इसइ' कहा जाता था और उसमें प्रयुक्त होने वाले स्वरों की ऊँचाई या निचाई को केल्वि कहा जाता था। श्रुति को अलुकु और ताल को सीर या पाणि के नाम से जाना जाता था।

शैव वंश की सांगीतिक रचनाएँ, जैसे— *तेवारम्*, *तिरुवाचकम्*, *तिरुप्पुगल*, *तिरुवाइमोज़ी* थीं। इसके रचयिता अप्पर, तिरुज्ञान सम्बन्दर, सुन्दरमूर्ति, नायनमार थे। वैष्णव रचनाएँ *तिरुप्पावइ*, *तिरुवैमपावइ* थीं जो विशिष्ट रागों एवं तालों में गाई जाती थीं। यह संगीत तेरहवीं शताब्दी तक चेरा, चोला एवं पाण्डया राजाओं के काल तक प्रचलित रहा।

चित्र (ए) –गिरिजा देवी— हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायन प्रस्तुत करते हुए

कर्नाटक संगीत का उद्‌गम

चौदहवीं शताब्दी में विजय नगर साम्राज्य की स्थापना के साथ कर्नाटक संगीत का उद्भव हुआ। आचार्य विद्यारण्य (1320–80)

Reprint 2025-26

की पुस्तक *संगीत सार* से इस बात की पुष्टि मिलती है। 'मेल' का निरूपण सर्वप्रथम उन्हीं की पुस्तक से प्राप्त होता है। कर्नाटक संगीत के प्रचार एवं विकास के लिए उनके शिष्य गण संगीतज्ञ व्यासराय, बसवराय, पुरन्दर दास (1484–1564) को श्रेय दिया जाता है। गीत, सूलादि और भजन संप्रदाय की विधाएँ इन सभी संगीतज्ञों के प्रयास से विकसित हुईं— ये 'दास कुटा' नाम से प्रचलित थे। इसी तरह अन्नमाचार्य ने हज़ारों पद एवं संकीर्तन की रचना की और यह 'तल्लपाक' नाम से जाने जाते थे। रामा अमात्य, जो वारंगल के तिम्मा राया या रामा राया के राज्य में मंत्री थे, ने *स्वरमेल कलानिधि* में 'मेल' सिद्धांत को परिष्कृत रूप से समझाया। इसी समय कीर्तन और तरंगम् का प्रचलन भी भ्रदचाल रामदास और नारायण तीर्थ ने किया। क्रमश: 'मेल' के सिद्धांत में बदलाव आए। गोविन्द दीक्षितर एवं व्यंकटमुखी जैसे प्रवीण संगीतज्ञों ने अपने ग्रंथ *संगीत सुधा* एवं *चतुर्दण्डी प्रकाशिका* में 'मेल' के मूल सिद्धांतों का वर्णन किया, जिसे गोविन्दाचार्य ने *संग्रह चूड़ामणि* में भी सम्मिलित किया।

चित्र (ऐ) – मृदंगम्

अठारहवीं शताब्दी के उपरांत कर्नाटक संगीत

राजाओं के दरबारों में 18वीं शताब्दी के उपरांत रागम्-तानम्-पल्लवी प्रचलन में आई। संगीतकारों के गुणों को समाज में दर्शाने के लिए इन विधाओं को अपनाया गया। कर्नाटक संगीत के स्वर्णिम काल का श्रेय त्यागराज (1767–1847), श्यामाशास्त्री (1776–1835), मुत्तुस्वामी दीक्षितार (1762–1827) को दिया जाता है। 'कृति' (जो शुद्ध रागों को दर्शाती है) का विकास इन तीन संगीतज्ञों के कारण ही संभव हुआ। महाराजा स्वाती तिरुनाल (1813–47) एवं गोपालकृष्ण भारती ने पदम्, वर्णम् एवं जावली जैसी सांगीतिक विधाओं को प्रचलित किया।

चित्र (ओ) – एलंगोवन एवं वेट्री भूपति— कर्नाटक शास्त्रीय गायन

मध्यकाल में उत्तरी भारत में मुसलमानों का आगमन हुआ, जिस कारण भारतीय संस्कृति पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़ता चला गया। उत्तर भारत की ओर से मुस्लिमों के प्रवेश के कारण उत्तर भारतीय संस्कृति, संगीत व कलाओं में मुस्लिम व भारतीय संस्कृति का मिला-जुला रूप सामने आया। दक्षिण भारतीय संगीत इस सांस्कृतिक परिवर्तन से अछूता रहा। इसीलिए चौदहवीं शताब्दी से उत्तर भारतीय संगीत पद्धति

© NCERT not to be republished

'हिन्दुस्तानी संगीत' के नाम से व दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति 'कर्नाटक संगीत' के नाम से दो विभिन्न धाराओं के रूप में विकसित होने लगी। 'कर्नाटक संगीत पद्धति' दक्षिण भारत के तमिलनाडु, कर्नाटक, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश व केरल आदि प्रांतों में प्रचलित है, जबकि 'हिंदुस्तानी संगीत' भारतीय संगीत के रूप में अन्य सभी प्रांतों में प्रचलित है।

मध्यकाल में संगीत का समुचित विकास हुआ। इसी काल में अमीर खुसरो से कव्वाली, सुल्तान हुसैन शर्की से खयाल गान, मानसिंह तोमर से ध्रुपद और वाजिद अली शाह से ठुमरी गायन को प्रोत्साहन मिला। अकबर के शासन काल में तानसेन और बैजू बावरा सदृश गायकों ने ध्रुपद का श्रेष्ठतम् प्रदर्शन किया।

ब्रिटिश काल में संगीत की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, किंतु तत्कालीन छोटी-छोटी रियासतों और ज़मीदारों के माध्यम से भारतीय संगीत पुष्पित और पल्लवित होता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी से पंडित विष्णु नारायण भातखंडे और पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रयासों के फलस्वरूप संगीत की विद्यालयी शिक्षा प्रारंभ हुई, जिससे संगीत की शिक्षा जन-जन को सुलभ हो सकी। आज विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में जिस तरह का संगीत शिक्षण का प्रचार हमें दृष्टिगोचर हो रहा है, यह इन दोनों विद्वानों की देन है। इस तरह हम पाते हैं कि भारत में संगीत सदा तीन स्तरों पर लोकप्रिय और प्रवाहित रहा है। पहला वह, जिसमें शास्त्रीय नियमों के अंतर्गत ही गायन, वादन व नृत्य किया जाता था, जिसे आज हम 'शास्त्रीय संगीत', कहते हैं। ध्रुपद, धमार, खयाल, तराना, चतुरंग, त्रिवट आदि गेय विधाएँ जो विभिन्न रागों में गाई जाती हैं, शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत आती हैं। दूसरा 'उपशास्त्रीय संगीत' जिसमें नियमबद्धता तो है, किंतु उसमें लचीलापन होने के कारण कहीं-कहीं नियमों की शिथिलता भी ग्राह्य मानी गई है। ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी आदि गीत के प्रकार इस वर्ग में सम्मिलित हैं। तीसरा 'लोक संगीत' जो मूलत: लोक अर्थात् सामान्य रूप से जनसाधारण में प्रचलित रहा है, जो समाज में संपन्न की जाने वाली विभिन्न रस्मों, रीति-रिवाजों व दैनिक क्रियाकलापों से संबंधित रहता है। इसमें विवाह गीत, ऋतु गीत, झूले के गीत, खेती व चूल्हे चक्की के गीत, विदाई गीत आदि गाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य संगीत के प्रकार को 'सुगम संगीत' के नाम से भी जाना जाता है। इसमें भक्ति संगीत, गीत, ग़ज़ल आदि समाविष्ट होते हैं। इनमें कभी शास्त्रोक्त रागों का, तो कभी लोकधुनों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

चित्र (औ) – छत्तीसगढ़ का लोक वाद्य

वर्तमान काल में भिन्न-भिन्न गायन शैलियों के कई घरानों का निर्माण हुआ। इसी काल में सितार, सरोद वाद्यों के लोकप्रिय होने से कई घराने निर्मित हुए। अत्यंत लोकप्रिय अवनद्ध वाद्य तबला के छह घराने प्रचार में आए, जबकि पखावज के मूल रूप से तीन घराने प्रचार में आए। वादन शैली की भिन्नता के आधार पर तबले के छह घराने बने जिनके नाम हैं— दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, फ़र्रुखाबाद,

Reprint 2025-26

बनारस और पंजाब। जबकि पखावज के तीन घराने बने जिनके नाम हैं— नाथद्वारा, कुदऊ सिंह तथा नाना साहब पानसे परंपरा।

सारांश स्वरूप कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत की शृंखला अनादि काल से चली आ रही है, जिसे प्रथमत: गंधर्व, किन्नर, अप्सराओं व देवी-देवताओं द्वारा प्रयोज्य माना गया और उसे गांधर्व की संज्ञा दी गई। तदोपरांत शास्त्रबद्ध होने पर वेदों, पुराणों, उपनिषदों व शिक्षा ग्रंथों आदि में वर्णित होने पर उसे मार्ग व देशी संगीत के रूप में परिभाषित किया गया। शास्त्रोक्त नियमों का कठोरता से पालन किए जाने पर उसे 'मार्ग' कहा गया। आबद्ध होने पर भी उसमें लोकरुचि के आधार पर नियमों की शिथिलता किए जाने पर, देशी संगीत की श्रेणी में रखा गया। यहीं से क्रमश: मंत्रोच्चारण, जातिगायन, ध्रुवगान, राग गायन, प्रबन्धगान, ध्रुपद, धमार, खयाल, चतुरंग, त्रिवट, तराना आदि गेय विधाओं का कालक्रमानुसार आविर्भाव होता चला गया। हज़ारों वर्षों से चली आ रही इस संगीत यात्रा में तंत्रीवादन की वादन शैलियों, सुषिर वाद्यों में अनेक प्रकार के रागों व धुनों आदि को नवीन चिंतन के साथ बजाने व अवनद्ध वाद्यों में अनेक प्रकारों के अनुरूप नए-नए कायदे, परन, टुकड़ों आदि को नवीन तकनीकी के साथ बजाने की परंपरा वर्तमान काल तक अनवरत रूप से चली आ रही है। आश्रम, गुरुकुल व संगीतशालाओं आदि में गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से संगीत का संरक्षण व विकास मौखिक व शास्त्रबद्ध रूप में प्रवाहित होता रहा है। उपशास्त्रीय संगीत के रूप में ठुमरी, दादरा, टप्पा, चैती, कजरी आदि विधाओं का विकास होता चला गया।

जनमानस में सामान्य रीति-रिवाजों, त्यौहारों के अवसर पर जो संस्कार गीत, ऋतुगीत, पूजा गीत, विवाह गीत आदि गाए जाते हैं या बाँसुरी, ढोलक, शंख, मंजीरा, सारंगी या हारमोनियम आदि वाद्य बजाए जाते हैं या उनके साथ विभिन्न तरह के नृत्य किए जाते हैं, उन पर हर प्रांत या स्थानीय भाषाओं, बोलियों और वेशभूषा आदि की छाप दिखाई देती है। यह लोकसंगीत के रूप में जाना जाता है। शास्त्रीय, उपशास्त्रीय व लोकसंगीत के बीच का प्रकार सुगम संगीत के रूप में पहचाना जाता है, जिसमें ग़ज़ल, भजन, गीत, भक्ति संगीत, कीर्तन आदि गीत प्रकार समन्वित रहते हैं, जिनमें कभी शास्त्रीय संगीत के रागों व गेय विधाओं का प्रभाव दिखाई देता है तो कभी लोक विधाओं का प्रभाव दिखाई देता है।

इस चिर पुरातन काल से चली आ रही संगीत की शृंखला को अध्ययन व शोध कार्य की दृष्टि से तीन स्थूल भागों में विभाजित किया गया है—

प्राचीन काल— इसके अंतर्गत प्राक् वैदिक काल से लेकर विभिन्न काल खण्डों से होते हुए तेरहवीं शताब्दी तक का क्रमिक विकास सम्मिलित है।

मध्यकाल— इसके अंतर्गत चौदहवीं शताब्दी से अठारवीं शताब्दी तक का सांगीतिक इतिहास व क्रमिक विकास सम्मिलित है।

आधुनिक काल— इसके अंतर्गत उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान काल तक का सांगीतिक इतिहास व क्रमिक विकास सम्मिलित है।

अंतत: कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत कल्पना व चिंतन पर आधारित एक ऐसी प्रक्रिया है जो किसी उपवन में खिले पेड़, पौधे, पत्तों व फूलों के समान निरंतर परिवर्तनशील रहती है। नित-नूतन आकार ग्रहण करती है, परंतु उपवन की परंपरागत रूपरेखा को संरक्षित व संवर्धित रखने के लिए निरंतर प्रयासरत रहती है।

Reprint 2025-26

© NCERT not to be republished

not to be republished

विषय-सूची

आमुख *iii*
प्राक्कथन *v*
भूमिका *xi*
भारतीय संगीत का ऐतिहासिक अवलोकन

1. भारतीय संगीत का सामान्य परिचय 1
2. कैसे दिखते हैं तबला एवं पखावज वाद्य? 13
3. तबला एवं पखावज वाद्यों पर बजने वाले वर्ण एवं बोल 21
4. तबला एवं पखावज वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास 27
5. ताल-लिपि पद्धति एवं विभिन्न ठेके 37
6. पारिभाषिक शब्द 55
7. भारतीय संगीत में वाद्य वर्गीकरण 71
8. तबला एवं पखावज वाद्यों के घरानों का वर्णन 85

पहेलियों के उत्तर 92
संदर्भ 93
परिशिष्ट 1 कुछ प्रचलित अवनद्ध लोक वाद्य 94
परिशिष्ट 2 तबला एवं पखावज वाद्यों के प्रमुख कलाकार 98
परिशिष्ट 3 ध्वनि का मस्तिष्क पर प्रभाव 104
परिशिष्ट 4 दृश्य कला और प्रदर्शन कला पाठ्यक्रम संचालित करने वाले कुछ विश्वविद्यालय 110

© NCERT not to be republished

अवनद्ध वाद्य

1 भारतीय संगीत का सामान्य परिचय

कलाओं को मूलभूत रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया गया है— ललित कलाएँ एवं अन्य उपयोगी कलाएँ। ललित कलाओं के पाँच प्रकार माने गए हैं— संगीत, काव्य, चित्रकला, मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला। सभी ललित कलाओं में संगीत को श्रेष्ठ माना गया है। यह वह कला है, जिसमें स्वर और लय द्वारा हम अपने भावों को प्रकट करते हैं।

11153CH01

"गीत, वाद्य तथा नृत्य त्रय सगीतमुच्यते।"

संगीत रत्नाकर

श्लोक 21, स्वरगताध्याय:

भावार्थ— गायन, वादन तथा नृत्य, इन तीनों कलाओं के समावेश को संगीत कहते हैं। संगीत शब्द सुनते ही हमें पसंद आने वाले गीत, वाद्य यंत्रों पर बजती धुन, नृत्य में थिरकते पैर— ऐसी बातों का आभास होता है। इसीलिए यह जानना आवश्यक है कि संगीत में गीत, वाद्य व नृत्य— तीनों समन्वित हैं।

संगीत का मूल आधार 'स्वर' और 'लय' है। 'स्वर' और 'लय' के साथ भाषा या कविता या पद का समन्वय, संगीत को अनूठा आकर्षण प्रदान करती है। संगीत की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार की गायन और वादन शैलियों द्वारा की जाती है। संगीत हमारी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। यह अभिव्यक्ति का एक ऐसा माध्यम है जो व्यक्ति को एक-दूसरे के साथ जोड़ता है। केवल मनुष्य एवं जीव-जंतु ही नहीं वरन्, पेड़-पौधों पर भी संगीत का प्रभाव पड़ता है। संगीत एक ऐसी औषधि है जो मनोवैज्ञानिक रूप से चित्त को एकाग्र कर उसे संतुलित बनाने की क्षमता रखती है।

चित्र 1.1– कला उत्सव— दिव्यांग बच्चों द्वारा समूह गीत की अनोखी प्रस्तुति

© NCERT not to be republished

शास्त्रीय संगीत

शास्त्रों में वर्णित नियमों के आधार पर निर्मित संगीत को शास्त्रीय संगीत कहा जाता है। चित्रकला, शिल्पकला, वास्तुकला आदि कलाओं का विकास पत्थर, पत्तों तथा कागज़ों पर बनाए गए चित्रों के रूप में विकसित हुआ है। संगीत ध्वनि प्रधान होता है, जिसमें शब्द की अपेक्षा ध्वनि के प्रयोग के रूप में स्वरों के उतार-चढ़ाव को अधिक महत्व दिया जाता है, गति को आकर्षित और संतुलित कर प्रयोग में लाया जाता है। आदिकाल से लेकर समय-समय पर किए गए विभिन्न सांगीतिक प्रयोगों का मंथन करके जब उन्हें निश्चित रूप दिया जाता है, तब वह शास्त्रबद्ध हो जाते हैं। शास्त्रों या ग्रंथों में संकलित नियमों का सहारा लेकर, परंपराओं के अनुसार प्रवाहित होने वाली संगीत प्रणाली को ही 'शास्त्रीय संगीत' के नाम से जाना जाता है। व्यक्ति और समय निरंतर परिवर्तनशील होते हैं और इसलिए उनकी रुचि व सामाजिक परिवेश तथा परिस्थितियों के अनुकूल संगीत के स्वरूप में अंतर होता रहता है। उसी आधार पर समय-समय पर शास्त्रोक्त नियमों में भी परिवर्तन होते रहते हैं, इसीलिए परंपराओं का अनुपालन करते हुए शास्त्रीय संगीत मर्यादित रूप में विकसित होता है और उसमें नित-नूतन आकर्षण भी बना रहता है।

शास्त्रीय संगीत के व्यावहारिक अंग में गायन, वादन, नृत्य के अनेक प्रकार और विविध शैलियाँ समायोजित हैं। इन्हें नियमबद्ध करने की परंपरा अथवा उनका सैद्धांतिक विश्लेषण करने की परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है। इसी के अंतर्गत ऋग्वेद मंत्रों में से कुछ मंत्रों को गेय बनाकर *सामवेद* के रूप में संकलित किया गया। वैदिक कालीन पुराणों और ग्रंथों में ही संगीत शास्त्र के सिद्धांतों व नियमों के अंतर्गत तीन सप्तक, सप्तस्वर, तीन ग्राम और उनकी मूर्च्छनाओं का विकास हुआ, इसी के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के वाद्य भी विकसित हुए। मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक शास्त्रीय संगीत में अनेक परिवर्तन आए। गेय विधाओं के अंतर्गत ध्रुपद, धमार, सादरा, खयाल, तराना आदि शैलियाँ प्रचलित हुईं। वाद्य यंत्रों की संरचना एवं बजाने के लिए बहुविध तकनीक अपनाई गई।

चित्र 1.2–शास्त्रीय गायन में तबला और हारमोनियम वाद्यों की संगति

उत्तर भारत में प्रचलित शास्त्रीय संगीत को 'हिंदुस्तानी संगीत पद्धति' के रूप में भी जाना जाता है। इसके अंतर्गत खयाल, ध्रुपद, धमार, तराना इत्यादि गाए-बजाए जाते हैं। दक्षिण भारत में प्रचलित शास्त्रीय संगीत को 'कर्नाटक संगीत पद्धति' कहा जाता है, जिसके अंतर्गत रागम्-तानम्-पल्लवी, वर्णम्, जावलि तथा तिल्लाना आदि विधाएँ समन्वित हैं। यद्यपि श्रुति ही दोनों का आधार है, लेकिन दोनों पद्धतियों में स्वरों की श्रुतियाँ, विधाएँ एवं भाषा भिन्न हैं।

© NCERT not to be republished

उपशास्त्रीय संगीत

जिन गेय विधाओं में संगीत के नियमों के कठोर पालन की अपेक्षा रस भाव और रंजकता की प्रधानता रहती है, वे उपशास्त्रीय संगीत की श्रेणी में आते है। ऐसी गेय विधाओं में, शब्दों के भावों को स्वरों के विविध अलंकृत प्रयोगों द्वारा व्यक्त किया जाता है। कण, मींड, मुर्की, बोल-बनाव आदि अलंकरण से शब्दों को सौंदर्यपूर्ण रूप में अभिव्यक्त करना उपशास्त्रीय संगीत का विशेष उद्देश्य होता है। ठुमरी, टप्पा, दादरा, उपशास्त्रीय संगीत की महत्वपूर्ण गेय विधाएँ हैं। उपशास्त्रीय संगीत में एक राग से दूसरे राग में जाने की भी स्वतंत्रता होती है। रंजकता और भावाभिव्यक्ति का मूल उद्देश्य होने के कारण छोटे-छोटे स्वर समूहों का समावेश और भावों की सूक्ष्मता और सुकुमारता इस संगीत की विशेषता है।

चित्र 1.3–शास्त्रीय गायन प्रस्तुति

उपशास्त्रीय संगीत के अंतर्गत हिंदुस्तानी संगीत में ठुमरी, दादरा, टप्पा, चैती आदि गायन शैलियों का समावेश है, जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

1. **ठुमरी**— ठुमरी एक ऐसी गेय विधा है, जिसमें लोक और शास्त्रीय, दोनों प्रकार के संगीत के तत्व विद्यमान हैं। ठुमरी को शृंगार रस प्रधान शैली माना गया है। इस गेय विधा में स्वर व शब्द एक-दूसरे के पूरक हैं, इसीलिए एक ही शब्द को बोल-बनाव के रूप में विभिन्न स्वर नयी-नयी छवियाँ प्रदान करते हैं। अवध के नवाब वाजिद अली शाह को ठुमरी का विशेष प्रचारक माना जाता है। तब से लेकर आज तक ठुमरी के विविध स्वरूप विकसित होते रहे हैं। ठुमरी में कठिन रागों की अपेक्षा सरल व संकीर्ण प्रकृति के रागों, जैसे— भैरवी, काफ़ी, खमाज, पीलू आदि का प्रयोग होता है। इसमें दीपचंदी, जत, चाचर, कहरवा आदि तालों का प्रयोग होता है। ठुमरी गायन में तबला वादक भिन्न-भिन्न लग्गियों का प्रयोग करते हैं, जिससे ठुमरी गायन का सौंदर्य कई गुना बढ़ जाता है। वर्तमान समय में ठुमरी के दो प्रमुख रूप प्रचलित हैं —

   (i) बोल-बनाव की ठुमरी
   (ii) बोल-बाँट की ठुमरी

2. **दादरा**— दादरा उपशास्त्रीय संगीत की बहुत ही सुंदर व चपल-चलन युक्त विधा है। इस शैली में शब्दों की प्रधानता अधिक होती है। दादरा गीत, दादरा ताल के अतिरिक्त अन्य तालों में भी गाए-बजाए जाते हैं। इसमें ठुमरी के समान फैलावयुक्त बोल-बनाव नहीं होता, परंतु लय के साथ चलते हुए शब्दों व स्वरों को भिन्न-भिन्न रूप से गूँथते हुए भाव

की अभिव्यक्ति की जाती है। इसमें एक से अधिक अंतरा गाने का प्रचलन है। यह विधा चंचल होती है, इस विधा में स्वर व लय आधारित शब्दों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि दादरा का मूल रूप स्पष्ट होता रहे या जिस ताल का आश्रय लिया गया है, उसकी चाल स्पष्ट होती रहे। दादरा में प्रयुक्त गीत का काव्य वसंत, वर्षा आदि ऋतुओं से या राधा-कृष्ण के शृंगारात्मक वर्णन से संबंधित होता है। दादरा गायन के बीच-बीच में उस विषय से संबंधित दोहे कुछ कवित्त आदि भी गाए जाते हैं, जिनका मूल रचना से सीधा संबंध नहीं होता है। इसमें भी छोटी-छोटी लग्गियों का प्रभावपूर्ण वादन किया जाता है।

3. **टप्पा**— अठारहवीं शताब्दी में लखनऊ के नवाब आसिफुद्दौला के दरबार में एक पंजाबी गायक गुलाम नबी शोरी, जो 'शोरी मियाँ' के नाम से प्रसिद्ध थे, ने टप्पा गायकी को प्रचलित किया। पंजाब प्रदेश से संबंधित होने के कारण ही संभवत: टप्पा गायकी की गीत रचनाओं में अधिकांशत: पंजाबी, सिंधी व मुल्तानी भाषा के शब्दों का प्रयोग होता है। इन दिनों हिंदी व बांग्ला भाषा का प्रयोग भी होने लगा है। इस गायन विधा में शब्द, स्वर व लय, तीनों को कहीं विश्राम नहीं मिलता है। पूरी गायकी छोटी-छोटी द्रुत गति की तानों पर आधारित होती है। टप्पा की उत्पत्ति 'टप' शब्द से हुई है। इस गायकी में कण, खटका व मुर्की का अधिक प्रयोग किया जाता है। काफ़ी, पीलू, खमाज, भैरवी, झिंझोटी आदि रागों में इसे गाया जाता है। इसकी गीत रचना में स्थायी व अंतरा, दो भाग होते हैं। इसके साथ जत, दीपचंदी, चाचर, अद्धा आदि तालों का प्रयोग किया जाता है।

4. **होरी**— उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों की लोक भाषाओं में अलग-अलग शैलियों की होरी सुनने को मिलती है। होरी मुख्यत: दीपचंदी, कहरवा, जत ताल आदि में गाई जाती है। होरी शब्द से यह ज्ञात हो जाता है कि इस शैली में होरी से संबंधित प्रसंग, राधा-कृष्ण के होरी खेलने व उनकी छेड़छाड़ इत्यादि का वर्णन किया गया है। यदि उपशास्त्रीय संगीत के अंतर्गत हम होरी गाते हैं तो होरी में छोटे-छोटे शब्द को लेकर तरह-तरह के बोल-बनाव बनाए जाते हैं, जिससे कि शब्दों के भाव स्पष्ट होते रहते हैं, लेकिन जब हम होरी को लोक संगीत के संदर्भ में गाते हैं तो इसमें बोल-बनाव नहीं किया जाता है। यह मूलत: अवधी और ब्रज भाषा में गाए जाते हैं।

चित्र 1.4–वाद्य यंत्र बजाकर नृत्य करते हुए स्कूल के विद्यार्थी

5. **चैती**— चैती अपनी मधुरता, सरलता व कोमलता के लिए जानी जाती है। इसे मुख्य रूप से चैत्र मास में गाए जाने के कारण चैती कहा गया है। 'हो रामा' शब्द इस गीत की विशेष टेक है। चैती भी शृंगार रस से परिपूर्ण गीत है। होली के बाद चैत्र महीने का आगमन होता है; इसी समय चैती गाने का प्रचलन है। चैती को उपशास्त्रीय गायन विधाओं के अंतर्गत रखा गया है— इसमें

एक से अधिक अंतरा गाने का प्रचलन है। राम जन्म से संबंधित गीत भी इसमें गाए जाते हैं। यह मूलत: अवधी भाषा में गाई जाती है।

6. **कजरी**— लोकसंगीत की विधाओं में कजरी भी गायन का एक प्रकार है। यह श्रृंगार रस से परिपूर्ण गीत का एक प्रकार माना जाता है। कजरी मुख्य रूप से सावन में गाई जाती है। बनारस व मिर्ज़ापुर क्षेत्र कजरी गायन के लिए जाना जाता है। कजरी के गीतों में छंद के अनेक प्रकार देखने को मिलते हैं।

सुगम संगीत

'सुगम' शब्द का अर्थ है 'सरल' या 'सहज', इसीलिए सुगम संगीत का अर्थ है— सरलता या सहजता से गाए-बजाए जाने वाला संगीत। स्वाभाविक है कि इस प्रकार के संगीत में विशिष्ट गेय विधा या शैली के स्वरूप को बनाए रखने के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के नियमों का बंधन नहीं होता। इस संगीत में यदि राग का आधार लिया गया हो तो भी राग के नियमों में शिथिलता रहती है। भाव प्रदर्शन के लिए यदि आवश्यक हो तो आलाप-तान या स्वरों का प्रयोग गीत के सौंदर्य वर्धन के लिए किया जा सकता है। सुगम संगीत में विशेष तत्व, हाव-भाव, गहराई, रंजकता और सुंदर शब्द इसे विशेष स्थान प्रदान करते हैं। शास्त्रीय या उपशास्त्रीय संगीत के बंधनों से मुक्त इस संगीत के अंतर्गत भजन, पद-गायन, काव्य, गीत, गज़ल आदि का समावेश होता है। कहा जा सकता है कि लय व तालबद्ध कविताएँ, ईश्वर का गुण-गान या महान चरित्रों वाले व्यक्तियों पर आधारित गीत, ऋतुओं से संबंधित गीत, गज़ल आदि सुगम संगीत के अंतर्गत आते हैं। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अपनी विचारात्मक अभिव्यक्ति और भाषाओं के अनुरूप सुगम संगीत अपना आकार-प्रकार ग्रहण करता है।

ये विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग भाषाओं में रचा जाता है। इसके नाम भी भिन्न हैं, जैसे— तमिलनाडु में लिसाई, केरल में ललित संगीतम, बंगाल में आधुनिक गीत, कर्नाटक में लघु संगीत आदि।

लोक संगीत

लोक संगीत का तात्पर्य है— सामान्य जनमानस का संगीत। लोकतंत्र, लोकप्रिय जैसे शब्दों के आइने में इसे देखा जा सकता है। कोई भी व्यक्ति अपने मन के भावों को या दैनिक क्रियाकलापों को स्वर या लय का प्रयोग करते हुए गायन या वादन के माध्यम से अभिव्यक्त करता है तो वह अभिव्यक्ति लोक संगीत में समाहित हो जाती है। भावों की सरलतम एवं मधुरतम अभिव्यक्ति ही लोक संगीत का मूल उद्देश्य होता है। जब भी कोई कला उभरती है, वह सर्वप्रथम लोक ही होती है, बाद में परिष्कृत होकर वह कला शास्त्रीय कला के रूप में स्थापित हो जाती है।

© NCERT not to be republished

व्यक्तियों से मिलकर समाज बनता है और विशिष्ट स्थान के लोगों से निर्मित समाज पर उस स्थान के रहन-सहन, वेशभूषा और रीति-रिवाजों का प्रभाव होता है। जब जीवन से जुड़ी स्थितियाँ, घटनाएँ या जीवन शैलियाँ लोक गीतों के माध्यम से मुखरित होती हैं तो अनायास ही रस की वर्षा करने लगती हैं और मन को मोह लेती हैं। लोक संगीत में आम जन-जीवन के रीति-रिवाज और उसके सामाजिक परिवेश का प्रतिबिंब दिखाई देता है। इन गीतों की धुन सहज और सरल होती है। इन गीतों की रंजकता बढ़ाने के लिए स्थानीय लोक वाद्यों का प्रयोग किया जाता है। लोक संगीत, लोक की चेतना को अभिव्यक्त करता है, इसलिए ये कभी पुराना नहीं होता। कुछ प्रदेशों के प्रचलित लोकगीतों व नृत्य शैलियों के नाम निम्नलिखित हैं—

प्रदेश	गायन एवं नृत्य शैलियाँ
असम	बिहू, छऊ आदि।
उत्तर प्रदेश	होरी, बारहमासा, कजरी, चैती, रसिया, लांगुरिया, बिरहा, रासलीला, नौटंकी के गीत प्रकार आदि।
गुजरात	गरबा, रास, डांडिया आदि।
पंजाब	हीर, टप्पा, गिद्दा, भांगड़ा आदि।
महाराष्ट्र	लावणी, मंगलागौर आदि।
राजस्थान	गोरबंद, मांड, घूमर, झूमर, कालबेलिया आदि।
जम्मू कश्मीर	भाण्ड, पाथिर, रउफ़, जबरो, चकरी आदि।
अरुणाचल प्रदेश	टापू, पोनंग, नीशीदोऊ, लोकूबवांग आदि।
केरल	तिरुवादिरकली, पाना, तुल्लल, थेय्यम आदि।
आंध्र प्रदेश	धिमसा, बुर्रा कत्था, तोलू, बोम्मालता, रोत्तेला पंडुगा आदि।
पश्चिम बंगाल	बाऊल, रबिन्द्र संगीत, भटियाली, गोडीय, छऊ आदि।

किसी भी देश या प्रांत में लोक कलाएँ सांस्कृतिक धरोहर मानी जाती हैं। लोक संगीत को गाने-बजाने के लिए एवं इसकी संरचना हेतु किसी भी तरह के व्याकरण या शास्त्रीय पक्ष के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है। लोक संगीत किसी विशिष्ट व्यक्ति की रचना नहीं होती है। लोगों के बोल-चाल की भाषा, अंतर्मन के उद्गार या विचारों को सुर एवं ताल में निहित करने को ही लोकगीत कहा जाता है। दक्षिण भारत में लोक संगीत, नाट्टु पाट्टु, नाडोडी पाट्टु, जनपद गीतालु के नाम से जाना जाता है। ज़्यादातर लोक संगीत व्यवसाय, प्राकृतिक विश्लेषण, व्यक्ति विशेषता, रीति-रिवाज की व्याख्या करते हैं, जैसे— फ़सल का रोपण और कटाई, प्रकृति की पूजा, आराध्य देवी-देवताओं का पूजन, समाज की रीतियाँ, शादी-ब्याह, जन्म-मृत्यु इत्यादि लोक संगीत के विषय होते हैं। यह मनोरंजन का एक अपूर्व साधन है, जो मनुष्य जाति को ऊर्जा प्रदान करता है। ज़्यादातर लोक संगीत की रचना गाँव या दूरवर्ती इलाके में होती है। साधारण लोगों द्वारा रची जाने के कारण इसके शब्द सरल लेकिन मार्मिक होते हैं, धुन प्रांत विशेष होते हैं और ज़्यादातर एक ही सप्तक में गाए-बजाए

© NCERT not to be republished

जाते हैं। इसी कारण विशिष्ट समाज की गाथाओं को मानव समाज के समक्ष प्रस्तुत करने में लोक संगीत का अमूल्य योगदान है। लोक संगीत की रचना स्वत: होती है और इसके रचनाकार संगीत में प्रशिक्षित भी नहीं होते हैं। लोक संगीत के गीतों को ऐसे नाम दिए जाते हैं, जिससे विषय-वस्तु को आसानी से भाँपा जा सकता है। दक्षिण भारत में लोक गीतों के नाम हैं— आनन्दकलिप्पु, ओडम नोन्डिचिंदु, लावणी भवई वांछिपाट्टु, ऊन्जलपाट्टु इत्यादि। लोक गीतों में पूरे गीत में धुन और लय एक जैसी रहती है और बहुत वैचित्र्य नहीं दिखाई देता है। कुछ लोक संगीत में रागों के स्वर साफ़ सुनाई देते हैं, लेकिन वे अशोधित होते हैं, जैसे— पुन्नागवराली कुरंजी नीलाम्बरी, नाथनामक्रिया, नवरोज, आनन्द भैरवी इत्यादि। अगर हम कुरम गीतों को सुने तो राग कुरंजी के स्वर समूह साफ़ सुनाई देते हैं। दक्षिण भारतीय लोक गीतों में चापू आदि और रूपक ताल पाए जाते हैं। वास्तव में, चापू ताल और उसकी विभिन्न लयकारी के रूप लोक संगीत में अनेक प्रकार से पाए जाते हैं। लोक संगीत के कलाकार विविध वाद्य बजाने में सक्षम होते हैं। देखा जाता है कि लोक संगीत में तंत्री और सुषिर वाद्य की तुलना में अवनद्ध वाद्य का ज़्यादा प्रयोग किया जाता है।

तंत्री वाद्य, जैसे— एकतारा, तुन्दिना, पुल्लवन्नकुडम नन्दुनी, सारंगी इत्यादि लोकप्रिय वाद्य हैं। सुषिर वाद्यों में, शंख, वेणु, कोम्बू, शहनाई, नादस्वरम, कुरुम कुज़ल, नेडुम कुज़ल तिरुचिन्नम, एककलम, मगुडी दक्षिण भारत के सुपरिचित वाद्य हैं। ढोल, ढोलक, टप्पाताई, तम्बट्टम, तमक्कू, तन्तीपानइ, तविल, उडुक्कु, उरुमी, कुण्डलम, खंजीरा, गुम्माटी इत्यादि प्रचलित अवनद्ध वाद्य हैं। जलरा कुज़ीतालम सेमक्कलम, कइचिलम्बु कुछ प्रचलित लोक वाद्य धातु से बनाए जाते हैं। लोक संगीत के कई प्रकार पाए जाते हैं—

1. **नैतिक गान**— नाम से ही ज्ञात होता है कि समाज में नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं।
2. **काम-काज गीत**— खेती-बाड़ी, मछली पकड़ना, दूध बेचना या ग्वाला का काम करना, ठेला चलाना, नौका गीत— ये गीत विभिन्न तरह के काम-काज का विवरण देते हैं।
3. **वर्षा एवं खेती पर आधारित गीत**— वर्षा के न होने एवं फ़सलों की बुवाई, निराई, कटाई के समय गाए जाने वाले गीत।
4. **लोरी**— बच्चों को सुलाने के गीत।
5. **महत्वपूर्ण व्यक्तियों से संबंधित गीत**— सम्मान, प्रशंसा गीत आदि।
6. **सामूहिक गीत**— समूह में एकत्रित व्यक्तियों के द्वारा गाए जाने वाले गीत, जैसे— देशप्रेम, सांस्कृतिक गरिमा, आध्यात्मिक उपदेशों पर आधारित गीत इत्यादि।
7. **त्यौहारों के गीत**— देश में मनाए जाने वाले विभिन्न त्यौहारों पर गाए जाने वाले गीत।

संस्कार गीत

मानव जाति आपस में संबंध बनाने के लिए संगीत एवं नृत्य का सहारा लेती थी। विकास के साथ मानव ने खेती-बाड़ी का महत्व समझकर उसे अपनाया। खेती करने के लिए मनुष्य प्रकृति

© NCERT not to be republished

पर निर्भर था, इसीलिए धीरे-धीरे उसने प्रकृति की पूजा करना शुरू किया। वर्षा, धूप, आग, जल इत्यादि सभी को वह संतुष्ट रखना चाहता था, क्योंकि वे उसके सुख एवं समृद्धि के लिए आवश्यक थे। समाज के बुद्धिमान एवं प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा कुछ समारोह एवं संस्कारों के प्रथागत एवं पारंपरिक कृत्य संस्कार बन गए। इस प्रकार प्राचीन काल से समीक्षा की जाए तो देखा जाता है कि संस्कारों का पालन समाज का अभिन्न अंग है। रीति-रिवाज इत्यादि संस्कार से ही जुड़े हुए हैं। क्रमश: इन्हें धर्म का नाम दे दिया गया है और उनका पालन करना अनिवार्य माना जाता है।

बहुत-से संस्कार या रीतियाँ हमारे वर्तमान समाज का अभिन्न अंग बन गई हैं। साधारण जनमानस को आकर्षित करने के लिए इन संस्कार रीतियों में संगीत का उपयोग बहुत सामान्य है।

दक्षिण भारतीय संगीत में निम्नलिखित उदाहरण इस तथ्य को और भी स्पष्ट करते हैं—

1. **सोपान संगीतम—** यह संस्कार केरल के मंदिरों में कार्यान्वित है। मंदिर के अंदर जहाँ देवी-देवता विराजमान होते हैं, वहाँ तक पहुँचने की सीढ़ियों को सोपान कहा जाता है। हिंदुओं के इन मंदिरों में जब पूजा के रीति-रिवाज के अनुसार कार्य किए जाते हैं तो मंदिरों की सीढ़ियों पर 'मरार' नामक सम्प्रदाय संगीत प्रस्तुत करता है। इस गायन शैली के साथ इडैक्का बजाया जाता है। इस पवित्र प्रथा में 'गीत गोविन्दम' जो 'अष्टपदी' नाम से विख्यात है, भी प्रस्तुत किया जाता है। सोपान संगीत की गायन शैली, राग, ताल सभी को दूसरी शैलियों को प्रस्तुत करने के लिए अपनाया गया है, जैसे— कृष्णनाट्टयम, कथकली और अष्टपदीथाट्टम।

चित्र 1.5– नृत्य की भंगिमा में प्राचीन मूर्तिकला

2. **तेवारम, तिरुवाचकम—** तमिलनाडु के शैव समुदाय के लोग इन शैव स्तोत्रों को गाते-बजाते हैं। ओदुवार नामक समुदाय में इन स्तोत्रों को अप्पर, तिरुज्ञान समबन्धर, सुन्दरमूर्ति द्वारा रचित किया गया और इन्हें शैवीय संस्कार के लिए पेश किया जाता है। इनके राग और ताल प्राचीन तमिल शास्त्रीय संगीत में पाए जाते हैं। भगवान शिव के लिए रचे गए कवि एवं साधु माणिक्यवाचकर द्वारा इसी संस्कार में बीस पंक्तियों की एक और अन्य शैली का प्रदर्शन किया जाता है, जिसे तिरुवेम्पावइ नाम से जाना जाता है।

3. **तिरुप्पावइ एवं अन्य दिव्य प्रबंध—** मुडियेत्तु, अयप्पन पाट्टु, भगवती पाट्टु, सर्पम पाट्टु, नावोरू इत्यादि दक्षिण भारत की सांगीतिक रचनाएँ, विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा अर्चना के लिए गाई-बजाई जाती हैं। पुल्लुवन्कुडम, उडुक्कु, नादस्वरम, तविल इत्यादि वाद्य यंत्रों का प्रयोग भी उपरोक्त दिए गए संस्कार गीतों के साथ संगत के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. *संगीत रत्नाकर* के अनुसार 'संगीत' की परिभाषा बताइए।
2. कर्नाटक संगीत पद्धति में प्रचलित विधाएँ कौन-सी हैं?
3. हिंदुस्तानी संगीत पद्धति की प्रचलित विधाएँ बताइए।
4. उपशास्त्रीय संगीत की गायन शैली टप्पा की रचनाओं में अधिकांशत: किन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग होता है?
5. दक्षिण भारत के पाँच राज्यों में प्रचलित किन्हीं पाँच लोकगीतों के नाम बताइए।
6. लोक संगीत का मूल उद्देश्य क्या है?
7. ठुमरी के प्रचलित प्रमुख दो रूप कौन-से हैं?
8. दक्षिण भारतीय लोक संगीत की प्रमुख तालें कौन-सी हैं?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. तिरुवेम्पावई नामक शैली को विस्तार से समझाइए।
2. उपशास्त्रीय संगीत की परिभाषा बताते हुए इसकी पाँच विधाओं के नाम बताइए।
3. लोक संगीत को पारिभाषित करते हुए इसमें प्रयुक्त होने वाले प्रमुख तंत्री, सुषिर एवं अवनद्ध वाद्यों के नाम बताइए।
4. उपशास्त्रीय संगीत गायन शैली 'टप्पा' को विस्तारपूर्वक समझाइए।
5. ललित कलाएँ कितने प्रकार की होती हैं? इन कलाओं में किस को श्रेष्ठतम माना गया है?

सही और गलत बताइए

1. संगीत एक ऐसी औषधि है, जो मनोवैज्ञानिक रूप से चित्त को एकाग्र कर, संतुलित बनाने की क्षमता रखती है।
2. शोरी मियाँ को ठुमरी का विशेष प्रचारक माना जाता है।
3. उपशास्त्रीय संगीत में एक राग से दूसरे राग में जाने की स्वतंत्रता नहीं होती है।
4. ठुमरी एक ऐसी विधा है, जिसमें लोक और शास्त्रीय, दोनों प्रकार के संगीत के तत्व विद्यमान हैं।
5. ऋग्वेद मंत्रों में से कुछ मंत्रों को गेय बनाकर सामवेद के रूप में संकलित किया गया है।
6. ढोलक, उड्डक्कू एवं गुम्माटी एक प्रकार के सुषिर वाद्य हैं।
7. 'हो रामा' शब्द चैती नामक गीत की विशेष टेक है।
8. दादरा गीत, दादरा ताल के अतिरिक्त अन्य किसी ताल में गाए-बजाए नहीं जाते हैं।

© NCERT not to be republished

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. गायन, वादन तथा नृत्य के समावेश को -- कहते हैं।
2. संगीत की दोनों पद्धतियों का आधार -- है।
3. नवाब वाजिद अली शाह को -- का प्रचारक माना जाता है।
4. चैती को -- माह में गाया जाता है।
5. राजस्थान का लोकप्रिय लोकनृत्य -- है।
6. सोपान संगीतम के अंतर्गत मंदिरों की सीढ़ियों पर -- नामक संप्रदाय संगीत प्रस्तुत करता है।

सुमेलित कीजिए

(क) ललित कला	1. शोरी मियाँ
(ख) हिंदुस्तानी संगीत	2. जम्मू कश्मीर
(ग) ठुमरी	3. अवनद्ध वाद्य
(घ) पल्लवी	4. मिर्ज़ापुर
(ङ) टप्पा	5. सुषिर वाद्य
(च) कजरी	6. अष्टपदी
(छ) गोडीय	7. धातु वाद्य
(ज) चकरी	8. ध्रुपद
(झ) कोम्बू	9. कर्नाटक संगीत
(ण) तन्तीपानई	10. पश्चिम बंगाल
(ट) कइचिलम्बु	11. मूर्तिकला
(ठ) गीत गोविन्दम	12. नवाब वाजिद अली शाह

विद्यार्थियों हेतु गतिविधि

1. अपने परिवेश में होने वाले समारोहों या उत्सवों में बजाए जाने वाले विभिन्न वाद्यों के छायाचित्रों का संकलन कर, अध्याय 'भारतीय संगीत का सामान्य परिचय' में वर्णित वाद्य-वर्गीकरण के

© NCERT not to be republished

आधार पर वर्गीकृत करें। समारोहों व उत्सवों में संगत या स्वतंत्र वाद्य-वादन करने वाले कलाकारों का संक्षिप्त साक्षात्कार करके निम्न बिंदुओं पर चर्चा कर विवरण एकत्र कीजिए—

- कलाकारों की जीविका के अन्य स्रोत
- कलाकारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व रहन-सहन
- विश्व के मानचित्र पर इनके पारंपरिक संगीत का चित्रण एवं महत्व

2. वर्तमान समय में प्रचलित 'सोशल-नेटवर्किंग साइट्स', जैसे— यू-ट्यूब, फ़ेसबुक और इन्स्टाग्राम आदि पर पाई जाने वाली विभिन्न शास्त्रीय व लोक शैलियों की प्रस्तुतियों का आकलन कर निम्न बिंदुओं को स्पष्ट कीजिए—

- शैली का विवरण एवं पृष्ठभूमि
- शैली में प्रयुक्त ताल एवं वाद्यों का विवरण
- प्रस्तुति में प्रयोग किए गए विभिन्न ध्वनि यंत्रों (sound equipment) का संक्षिप्त विवरण
- प्रस्तुतिकरण में मंच सज्जा एवं वेशभूषा का महत्व

3. नीचे दिए गए नृत्य प्रकारों एवं गीत शैलियों का उपयोग करते हुए रिक्त स्थानों को भरिए। (उत्तर कुंजी पहेली संख्या 1 पृष्ठ संख्या 92 देखें)

बिहू, हीर, ध्रुपद, तिल्लाना, कालबेलिया, बारहमासा, कजरी, लांगुरिया, गोरबंद, होरी, घूमर, जावली, वर्णनम्, तानम्, रागम्, लावनी, रासलीला, तराना, पल्लवी, सादरा, गरबा, होरी

	बि	हू	ही		का				
		ग							
	ध्रु								
	गो								
बा			मा			घू			
			डां			जा		ता	
				रा		व			म्
लां		रि			हो			म्	
			क						

NCERT © not to be republished

सामता प्रसाद मिश्र उर्फ़ गुदई महाराज

चित्र 1.6–सामता प्रसाद मिश्र

बनारस घराने के प्रसिद्ध तबला वादक पंडित सामता प्रसाद उर्फ़ गुदई महाराज का जन्म बनारस में 20 जुलाई, 1921 को हुआ था। इनके पिता पंडित बाचा मिश्र भी अच्छे तबला वादक थे। अत: सामता प्रसाद मिश्र की शिक्षा की शुरुआत उन्होंने ही की थी, किंतु यह जब मात्र छह वर्ष के थे तभी इनके पिता का निधन हो गया। अत: इनकी शिक्षा का दायित्व इनके मौसेरे भाई पंडित विक्रमादित्य मिश्र उर्फ़ खलीफ़ा पंडित बिक्कू महाराज ने अपने ऊपर ले लिया। पंडित बिक्कू महाराज की गहन देख-रेख में, 15–16 घंटे के प्रतिदिन के अभ्यास ने पंडित सामता प्रसाद में असीमित ऊर्जा का संचार कर दिया। इनका बचपन बहुत निर्धनता में बीता। उन दिनों आर्य समाज के जुलूस में, यह बैलगाड़ी पर बैठकर तबला बजाया करते थे, लेकिन 1942 में, जब इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के साथ अपना जादुई तबला वादन प्रस्तुत किया तो लोगों ने इन्हें बहुत पसंद किया। उसके बाद इन्हें पीछे मुड़कर देखने का अवसर नहीं मिला। तिरकिट, तकतक, धिनगिन और धिरधिर, किटितक जैसे बोलों पर इनका विशेष प्रभुत्व था। बायें की स्याही का भाग अपनी ओर रखकर इन्होंने उसमें जो गूँज पैदा की वह असामान्य थी, कई लोगों ने इस खूबी को अपनाने की कोशिश की है। साधारण और विशेष, इनके तबले की चटक और टनक प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी।

दिल्ली के विज्ञान भवन में इनका चमत्कारिक तबला वादन सुनकर रूस के राष्ट्रपति क्रुश्चेव इतने प्रभावित हुए कि रूस के मई दिवस के प्रसिद्ध समारोह में इन्हें आमंत्रित किया गया। वहाँ दुनियाभर के शासनाध्यक्षों ने इनका वादन सुना और उनका लोहा माना। यहीं से सामता प्रसाद, विश्व रंगमंच पर प्रसिद्ध हो गए। भारत के लगभग सभी बड़े संगीतकारों के साथ इन्होंने लगभग सभी बड़े मंचों पर अपना वादन प्रस्तुत किया। गायन और नर्तन तीन विधाओं की सफल संगति करने के साथ-साथ मुक्त तबला वादन में भी यह अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। मेरी सूरत तेरी आँखें, बसंत बहार, सुरेर व्यासी, जलसा घर, झनक-झनक पायल बाजे, महबूबा, किनारा और शोले आदि जैसी अनेक फ़िल्मों को भी अपने जादुई तबला वादन से इन्होंने सजाया था।

गुदई महाराज तबले का जादूगर, ताल मार्तण्ड, ताल शिरोमणि, तबला विजार्ड, ताल विलास, तबला सम्राट, संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, हाफ़िज़ अली खाँ सम्मान और पद्मश्री तथा पद्मभूषण के अलंकरण से अलंकृत थे। इनके दोनों पुत्र पंडित कुमार लाल मिश्र और कैलाश नाथ मिश्र, अच्छे तबला वादक हैं। शिष्यों में जे. मेसी, पार्थ सारथी मुखर्जी और सत्य नारायण वशिष्ठ के नाम प्रमुख हैं। पंडित सामता प्रसाद गुदई महाराज का आकस्मिक निधन 21 मई, 1994 को पुणे में हुआ। वह वहाँ एक कार्यशाला में भाग लेने के लिए गए थे, जहाँ हृदय गति रुक जाने से उनका देहांत हो गया।

© NCERT not to be republished

2 कैसे दिखते हैं तबला एवं पखावज वाद्य?

तबला

तबला उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रमुख अवनद्ध वाद्य है। इसका प्रयोग संगीत में गति या लय के मापन के लिए किया जाता है। शास्त्रीय, उपशास्त्रीय व सुगम संगीत के अतिरिक्त विभिन्न वाद्यों व कथक नृत्य में संगति के लिए तबला वाद्य का प्रयोग किया जाता है। अपने नाद सौंदर्य एवं नाद विविधता के गुणों के कारण तबला वाद्य को संगीत के विश्व मंच पर महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। आज संगीत जगत में तबला वाद्य, संगति वाद्य के अतिरिक्त एकल वादन के लिए भी प्रमुखता से जाना जाता है। संगीत सम्मेलनों में, गायन, वादन व नृत्य के साथ तबला एकल वादन के कार्यक्रमों को भी प्रमुखता से स्थान दिया जाता है। इससे कार्यक्रम में आकर्षण बढ़ जाता है।

11153CH02

तबला एक ऊर्ध्वमुखी वाद्य है, जिसके मुख्य रूप से दो अंग होते हैं — दायाँ और बायाँ। साधारणत: जिसे दाहिने हाथ से बजाते हैं, उसे तबला कहते हैं और जिसे बायें हाथ से बजाते हैं, उसे बायाँ या डग्गा कहते हैं। तबला लकड़ी का बना होता है। इसके निर्माण में साधारणत: शीशम, नीम और बीजासार की लकड़ी का प्रयोग होता है। तबले की लकड़ी अंदर से तीन हिस्से खोखली और एक हिस्सा ठोस होती है। ठोस वाला हिस्सा नीचे की तरफ़ होता है, जिससे बजाते समय तबला अनावश्यक हिलता नहीं है। बायाँ या डग्गा पीतल, ताँबा या मिट्टी का बना होता है। मिट्टी के डग्गे के टूटने की संभावना अधिक रहती है, इसलिए आजकल पीतल या ताँबे के डग्गे का प्रयोग अधिक प्रचलित है। लेकिन मिट्टी के डग्गे की आवाज़ सबसे अच्छी मानी जाती है। डग्गे का मुख दायें तबले के मुख की तुलना में बड़ा होता है। तबला वाद्य के प्रमुख अंगों का वर्णन निम्नलिखित है—

पूड़ी — तबले के दोनों मुखों (तबला और डग्गा) पर बकरे की खाल मढ़ी होती है जिसे पूड़ी कहते हैं। पूड़ी के मुख्य तीन भाग होते हैं — किनार या चाँट, लव और स्याही। तबले की पूड़ी डग्गे की तुलना में पतली होती है, क्योंकि तबले को ऊँचे स्वर में तथा डग्गे को नीचे स्वर में मिलाया जाता है।

चाँटी — पूड़ी के किनारे, मुख्य पूड़ी के अतिरिक्त चमड़े की एक पट्टी होती है, जिसे चाँट या किनार कहते हैं। दायें तबले की चाँट पर तबले के वर्ण — 'ता' या 'न' बजाए जाते हैं।

लव — पूड़ी पर चाँटी और स्याही के बीच के स्थान को 'लव' या 'मैदान' कहते हैं। तबले में लव पर 'ता' और 'तिं' वर्ण तथा डग्गे में 'गे' और 'घे' वर्ण बजाए जाते हैं।

© NCERT not to be republished

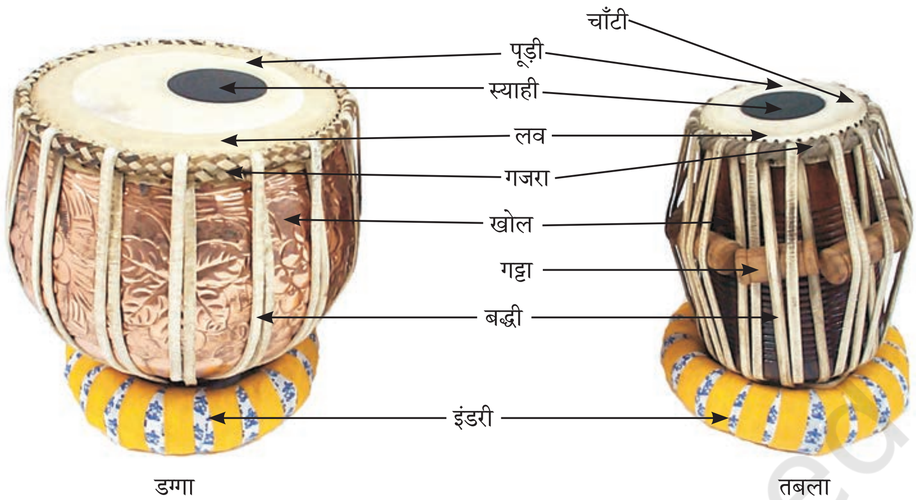

चित्र 2.1–तबला वाद्य की बनावट

स्याही — पूड़ी के बीच में काले रंग की गोलकार आकृति को स्याही कहते हैं। इसे लोहे के चूर्ण (राख) में लेई मिलाकर तैयार किया जाता है। स्याही को दायें तबले की पूड़ी के बीच में लगाते हैं, जबकि डग्गे में कलाई को रखकर बजाने की प्रक्रिया के कारण इसे बीच में न लगाकर, एक ओर, चाँटी की तरफ़ थोड़ा खिसकाकर लगाते हैं।

गजरा — तबले के मुख पर पूड़ी को कसने के लिए चमड़े की तीन पतली बद्धियों को आपस में गूँथकर कसा जाता है। इन आपस में गुँथी हुई माला सदृश्य बद्धियों को गजरा कहते हैं। इसके लिए गजरे में 16 छिद्र किए जाते हैं। इन्हें घर कहते हैं। तबला मिलाते समय गजरे पर आघात करके भी स्वर को ऊँचा या नीचा किया जाता है।

गट्टा — ये लकड़ी के टुकड़ों से निर्मित बेलनाकार और लगभग तीन इंच लंबाई के होते हैं। इन गट्टों का प्रयोग दाहिने तबले में किया जाता है। तबले के ऊपर कसी बद्धियों और तबले के खोड़ के बीच इन लकड़ी के गट्टों को फंसाकर रखा जाता है। इन गट्टों पर हथौड़ी से आघात करके नीचे खिसकाने से तबले के स्वर को आवश्यकतानुसार ऊँचा तथा आघात करके ऊपर खिसकाने से स्वर को आवश्यकतानुसार नीचा किया जा सकता है।

डग्गे की पूड़ी पतली होती है और तबले की मोटी, क्योंकि डग्गे को नीचे स्वर में मिलाया जाता है और तबले को ऊँचे स्वर में मिलाते हैं। पता लगाइए कि तबले की बनावट किस तरह विज्ञान से जुड़ी है।

बद्धी — यह चमड़े की डोर या पट्टी होती है। यह गजरे में किए गए छिद्रों से होती हुई, लकड़ी के गट्टों को दबाती हुए, लकड़ी के नीचे वाली इंडरी से गुज़रते हुए पूड़ी को कसती है। डग्गे में भी इसी चमड़े की बद्धी का प्रयोग किया जाता है, यद्यपि पूर्व में मज़बूत डोरी का प्रयोग किया जाता था, किंतु अब चमड़े से बनी बद्धी का ही प्रयोग दिखाई देता है।

© NCERT not to be republished

इंडरी या गुडरी (रिंग) — यह कपड़े, नारियल की डोरी, मूंज आदि से बनी गोल आकृति की होती है, जिस पर तबला और डग्गा रखकर वादन किया जाता है। इससे तबला वादन करते समय हिलता नहीं है और तबले तथा विशेषत: डग्गे की गूँज भी बढ़ जाती है।

चित्र 2.2– तबला बजाते हुए तबला वादक

पखावज

पखावज उत्तर भारतीय संगीत के प्रमुख अवनद्ध वाद्यों में से एक है। ध्रुपद व धमार गायकी में संगति के लिए इसका प्रयोग होता है। संगति के अलावा इसमें एकल वादन भी खूब पसंद किया जाता है।

पखावज दो मुखी वाद्य है जिसे लिटाकर बजाया जाता है। शीशम, बीजा या आम की लकड़ी से इसका मूल भाग बनाया जाता है। इसकी लंबाई लगभग 75 से 80 सेंटीमीटर होती है। इसका दाँया मुख छोटा तथा बाँया मुख बड़ा होता है। इसके दायें मुख का व्यास लगभग 16 से 18 सेंटीमीटर तथा बायें मुख का व्यास लगभग 24 से 25 सेंटीमीटर का होता है। पखावज के दोनों मुखों का व्यास इसकी लंबाई के अनुपात के हिसाब से घटाया या बढ़ाया जा सकता है।

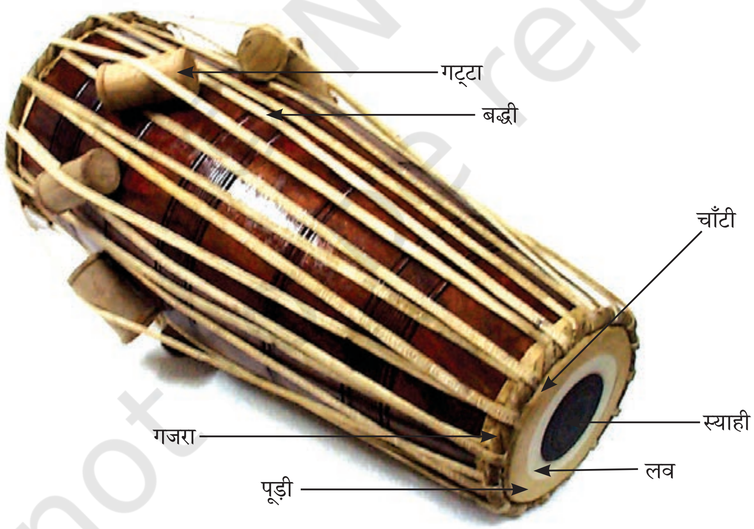

चित्र 2.3– पखावज वाद्य की बनावट

इसके बायें मुख पर गीला आटा लगाकर बजाते हैं, जिस कारण इसका स्वर नीचा और गंभीर होता है। जबकि दायें मुख पर स्याही का लेप लगा होता है और इसे बायें की तुलना में ऊँचे स्वर में रखते हैं, जिसे आवश्यकतानुसार किसी भी स्वर में मिला लेते हैं।

© NCERT not to be republished

पखावज की आवाज़ उसके लकड़ी के खोल पर निर्भर करती है। क्यों? विज्ञान के इस विषय पर सोच-विचार करें

पखावज के दोनों मुखों पर चमड़े की पूड़ी लगी होती है जो गजरे के साथ बद्धियों द्वारा आपस में कसी जाती है। इसकी पूड़ी में बकरे के चमड़े का प्रयोग किया जाता है और बद्धियाँ भैंस या ऊँट के चमड़े से बनाई जाती हैं। पखावज को आवश्यकतानुसार स्वर में मिलाने के लिए इसके गजरे पर 16 घर होते हैं, जिनकी सहायता से स्वर को चढ़ाकर या उतारकर वाद्य को मिलाते हैं। इसकी बद्धियों में लकड़ी के आठ गट्टे फँसे होते हैं जो वाद्य को मिलाने में मदद करते हैं। स्याही और चाँटी के बीच जो खुला स्थान रहता है, उसे लव या मैदान कहते हैं। पखावज की ध्वनि अधिक ज़ोरदार, गूँजमय और आँसदार होती है। दक्षिण के मृदंगम् और उत्तर के पखावज में सबसे बड़ा अंतर इसके आकार का होता है। पखावज वाद्य मृदंगम् से बड़ा होता है। पखावज में मुख्य रूप से चौताल, धमार, सूलताल, आदिताल, तीव्रा, बसंत, लक्ष्मी आदि तालों का प्रयोग किया जाता है।

मृदंगम् या पखावज वाद्य के कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

प्राचीन काल में इस आंकिक वाद्य को भक्ति संगीत के लिए प्रयोग में लाया जाता था। समाज के धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों का रामायण एवं महाभारत काल में जो वर्णन मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि उन दिनों में मृदंगम् अत्यंत प्रचलित था। ऐसा कहा जा सकता है कि वैदिक काल के बाद और रामायण काल के बहुत वर्ष पूर्व मृदंगम् का प्रयोग आरंभ हो गया होगा। पारंपरिक मंदिरों में आज भी इसी वाद्य का प्रयोग होता है।

चित्र 2.4–पखावज बजाते हुए पंडित मोहन श्याम शर्मा व अन्य कलाकार

अभ्यास

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. संगीत जगत में तबला वाद्य जाना जाता है—
   (क) एकल वादन हेतु (ख) संगति हेतु
   (ग) ध्रुपद की संगति हेतु (घ) क तथा ख दोनों के लिए
2. दायाँ तबला किससे बनता है?
   (क) मिट्टी (ख) पीतल (ग) ताँबा (घ) लकड़ी
3. किस वस्तु से निर्मित डग्गे की आवाज़ सर्वोत्तम मानी जाती है?
   (क) लकड़ी (ख) धातु (ग) मिट्टी (घ) फाइबर
4. चाँट पर बजने वाले वर्ण कौन-से हैं?
   (क) ता/न (ख) गे/घे (ग) धा/धिं (घ) तू/ना
5. पखावज में कितने घर होते हैं?
   (क) 12 (ख) 10 (ग) 8 (घ) 16
6. पखावज किससे बनता है?
   (क) लकड़ी (ख) मिट्टी (ग) धातु (घ) अन्य
7. पखावज के बायें मुख पर क्या लगाते हैं?
   (क) गीला आटा (ख) लोहे का चूर्ण
   (ग) स्याही का लेप (घ) केमिकल पाउडर
8. पखावज की बद्धियाँ किससे बनी होती हैं?
   (क) बकरे का चमड़ा (ख) भैंस का चमड़ा
   (ग) नारियल की मूँज (घ) सूती डोरी

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में लय-ताल हेतु किस प्रमुख अवनद्ध वाद्य का प्रयोग किया जाता है?
2. तबले की पूड़ी के मुख्य भाग कितने होते हैं? उनके नाम बताइए।
3. तबले और डग्गे के मैदान या लव पर बजने वाले वर्ण बताइए।
4. ध्रुपद और धमार में किस अवनद्ध वाद्य का प्रयोग संगति हेतु किया जाता है?
5. तबले की स्याही किससे बनती है?

© NCERT not to be republished

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. तबले में गजरे का महत्व बताइए।
2. तबले का तीन हिस्सा भाग खोखला व नीचे का भाग ठोस होता है। इसके वैज्ञानिक कारण बताइए।
3. तबले को स्वर में मिलाने के लिए तबले के किन-किन भागों पर आघात करते हैं?
4. पखावज की सामान्य लंबाई व उसके दोनों मुखों का व्यास बताइए।
5. पखावज के दायें मुख का स्वर बायें मुख की अपेक्षा किस प्रकार भिन्न होता है?

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. पखावज की लंबाई लगभग .... सेंटीमीटर होती है।
2. तबला .... श्रेणी का वाद्य है।
3. पखावज .... मुखी वाद्य है।
4. बायें तबले को .... नाम से भी जाना जाता है।
5. पखावज के बायें मुख पर .... का लेप लगाया जाता है।

सुमेलित कीजिए

(क) सूलताल	1. तबला
(ख) कहरवा	2. पखावज
(ग) झपताल	3. पखावज
(घ) रूपक	4. तबला
(ङ) तीव्रा	5. तबला

विद्यार्थियों हेतु गतिविधि

अपनी पसंद के किसी संगीत वाद्य पर निम्नलिखित बिंदुओं के अनुसार एक परियोजना (प्रोजेक्ट) तैयार करें—

- यह वाद्य किन वस्तुओं से बना होता है?
- इसकी बनावट की विधि क्या है?
- वाद्य के विभिन्न अंगों के नाम लिखिए।
- वाद्य से संबंधित किन्हीं तीन प्रसिद्ध कलाकारों के नाम बताइए।
- आज के समय में इस वाद्य का प्रयोग किन-किन रूपों में हो रहा है?
- वाद्य को त्रि-आयामी (3D) आकार में बनाइए।

© NCERT not to be republished

शिक्षक हेतु गतिविधि

बच्चों द्वारा संगीत वाद्यों की प्रतिकृति बनवाइए, जैसे— कौंगो, बौंगो, तबला, वीणा, पत्ते से बनी सीटी आदि।

आओ जानें— विद्यार्थियों हेतु

1. संगीत संबंधी स्टैम्प इकट्ठी कीजिए तथा संगीत की पुस्तिका में उन्हें चिपकाइए।
2. तबले एवं पखावज के चित्र देखकर उनके भिन्न-भिन्न भागों को नामांकित कीजिए।
3. वाद्यों की बनावट एवं जिन वस्तुओं से इसका निर्माण होता है, स्पष्टत: विज्ञान एवं पर्यावरण की ओर इशारा करते हैं। इन सभी तथ्यों को लेकर एक परियोजना बनाइए।

आओ जानें— शिक्षक हेतु

1. प्रसिद्ध तबला एवं पखावज वादकों के चित्र तथा उनसे संबंधित वीडियो विद्यार्थियों को दिखाइए।
2. कक्षा में नारियल के खोल तथा किसी अन्य खोखली वस्तु पर तबला या पखावज बनवाकर बच्चों को उसे बजाने के लिए प्रेरित कीजिए।

© NCERT not to be republished

अहमद जान थिरकवा

चित्र 2.5– अहमद जान थिरकवा

उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नामक शहर में संगीतज्ञों के प्रसिद्ध और पारंपरिक परिवार में सन् 1891 में, उस्ताद अहमद जान थिरकवा का जन्म हुआ था। पिता हुसैन बख्श, चाचा शेर खाँ, नाना कलंदर बख्श, मामा फैयाज़ खाँ व वस्वा खाँ अच्छे संगीतज्ञ थे और अहमद जान ने इन सबसे संगीत की शिक्षा प्राप्त की। लेकिन उनकी गुरु की तालाश तब पूरी हुई, जब उन्होंने उस्ताद मुनीर खाँ को अपना गुरु बनाया जो मुंबई में रहते थे। बाद में दिल्ली घराने के खलीफ़ा उस्ताद नत्थू खाँ का मार्गदर्शन भी इन्होंने प्राप्त किया। फ़र्रूखाबाद, दिल्ली, लखनऊ और अजराड़ा बाज के हस्तसिद्ध ताबलिक उस्ताद अहमद जान थिरकवा को शुरुआती सफलता नट सम्राट बाल गंधर्व की प्रसिद्ध महाराष्ट्र नाटक कंपनी में ताबलिक की हैसियत से काम करने पर मिली। उस्ताद अहमद जान थिरकवा को रामपुर सहित अनेक राजाओं का राज्याश्रय प्राप्त था। रामपुर के नवाब ने ही इनकी थिरकती अंगुलियों से प्रभावित होकर इन्हें थिरकवा की उपाधि दी थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद खाँ साहब लखनऊ स्थित भातखंडे संगीत महाविद्यालय (अब विश्वविद्यालय) में सहायक प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए।

खाँ साहब चारों पट के तबलिये थे। उन्होंने बहुत ही आकर्षक स्वतंत्र वादन तो किया ही था इसके साथ ही गायन, वादन और कथक नृत्य की भी बहुत अच्छी संगति की। कम लोगों को ज्ञात है कि उन्होंने कथक नृत्य के शिखर पुरुष पंडित अच्छन महाराज और पंडित बिरजू महाराज के नृत्य की संगत की थी। आज लगभग हर घराने के ताबलिक—

"धींक्ड धींधा ऽ धा धींधा धाति धाति ऽ धा धीधा"

नामक जिस पेशकार से अपने वादन का आरंभ करते हैं, उसे प्रचारित करने का श्रेय खाँ साहब को जाता है। खाँ साहब के तबले में गतिशीलता नहीं थी, किंतु बड़े मुँह के तबले पर मध्यम गति में जब वे वादन करते थे, तो उनके तबले से निकली गूँज लोगों को सम्मोहित कर लेती थी। घरानागत पारंपरिक गुणों का पूरी तरह पालन करते हुई भी वादन को लगातार कर्णप्रिय, रोचक और सरस बनाए रखना उनकी विशेषता थी। लखनऊ के भातखंडे संगीत महाविद्यालय से सेवानिवृत्ति के पश्चात् वे मुंबई के नेशनल सेंटर फ़ॉर परफ़ार्मिंग आर्ट्स (एन.सी.पी.ए.) में तबला अध्यापक रहे।

खाँ साहब को कई मान-सम्मान प्राप्त हुए। उन्हें राष्ट्रपति की ओर से स्वर्ण पदक मिला था। वे प्रथम तबला वादक थे, जिन्हें पद्मभूषण मिला था। उनके जीवन पर भारत सरकार द्वारा एक वृतचित्र भी बनाया गया था। उनके वादन का ध्वन्यांकन अनेक व्यावसायिक-अव्यावसायिक कंपनियों और संस्थानों ने किया। पंडित निखिल घोष, लालजी गोखले, प्रेम बल्लभ, सूर्यकांत गोखले, सुधीर संसारे, राजकुमार शर्मा, एम. वी. भिंडे, नारायण जोशी, मोहन लाल जोशी, सुधीर कुमार वर्मा, सरवत हुसैन आदि शिष्यों ने इनकी परंपरा का पर्याप्त प्रचार-प्रसार किया। खाँ साहब का आकस्मिक निधन 13 जनवरी, 1976 को लखनऊ में हुआ था।

© NCERT not to be republished

3 तबला एवं पखावज वाद्यों पर बजने वाले वर्ण एवं बोल

तबला वाद्य पर बजने वाले मूलत: 10 वर्ण माने जाते हैं जिनमें छह वर्ण दाहिने तबले पर तथा दो वर्ण बायें तबले या डग्गे पर स्वतंत्र रूप से बजाए जाते हैं, जबकि दो वर्णों को संयुक्त वर्ण माना जाता है। इसके अतिरिक्त भी कुछ वर्णों का निकास भी प्रयोग में लाया जाता है।

11153CH03

चित्र 3.1–बायें तबले के वर्ण

बायें तबले पर दो वर्ण

बायें या डग्गे पर निकलने वाले वर्ण हैं

i) कत/के/कि
ii) घे या गे

दायें तबले पर छह वर्ण

दाहिने तबले पर निकलने वाले वर्ण हैं

i) ता/ ना　　ii) तिं
iii) ति/ते　　iv) ट/र
v) तूं/तू　　vi) दीं/थुं/न/ता

चित्र 3.2–दायें तबले के वर्ण

जबकि दो वर्णों अर्थात् धा, धिं को संयुक्त वर्ण माना जाता है।

चित्र 3.3–संयुक्त वर्ण

© NCERT not to be republished

दाहिने तबले पर निकलने वाले वर्ण

1. **ता/ना**— दाहिने तबले पर अनामिका को रखते हुए तर्जनी से तबले की चाँटी पर आघात करके उठा लेने से 'ता' या 'ना' की ध्वनि उत्पन्न होती है। चाँटी पर आघात करते समय मध्यमा अँगुली ऊपर की ओर होनी चाहिए।
2. **तिं**— दाहिने तबले पर अनामिका को रखते हुए तर्जनी से लव पर आघात करने से 'तिं' की ध्वनि उत्पन्न होती है।
3. **ति/ते**— मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा अँगुलियों को आपस में जोड़कर दाहिने तबले की स्याही के मध्य में आघात करके दबा देने से 'ते' या 'ति' की ध्वनि उत्पन्न होती है।
4. **ट/र**— तर्जनी से स्याही के मध्य भाग में आघात करके दबा देने से 'ट' या 'र' बजता है। बजाते समय शेष अँगुलियाँ ऊपर की ओर उठी होनी चाहिए।
5. **तूं/तू**— दाहिने तबले में स्याही के किनारे पर तर्जनी से आघात करने पर ध्वनि 'तूं' या 'तू' उत्पन्न होती है। 'तू' या 'तूं' बजाते समय अँगुलियों का कोई भी हिस्सा तबले से नहीं लगना चाहिए।
6. **न/ता/दीं/थुं**— हाथ की चारों अँगुलियों को आपस में जोड़कर दाहिने तबले की स्याही के शीर्ष भाग पर आघात करके उठा लेने से 'थुं' या 'दीं' की ध्वनि उत्पन्न होती है।

डग्गे पर निकलने वाले वर्ण

1. **कत/के/कि**— बायें हाथ की कलाई को मैदान में रखते हुए चारों अँगुलियों को आपस में मिलाने और बायें तबले के किनारे पर आघात कर उसे दबा देने से 'कत' या 'के' या 'कि' की ध्वनि निकलती है।
2. **घे/गे**— डग्गे पर बायें हाथ की कलाई को मैदान में रखते हुए मध्यमा और अनामिका अँगुलियों को आपस में जोड़कर स्याही और किनारे के बीच के स्थान पर आघात करने से ध्वनि 'घे' या 'गे' उत्पन्न होती है।

तबला और डग्गे पर बजने वाले बोल तथा उनका निकास

1. **तिर/तिट** — 'तिट' दाहिने तबले पर बजने वाला बोल है। दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा अँगुलियों को आपस में जोड़कर दाहिने तबले की स्याही के मध्य में आघात करके दबा देने से 'ति' वर्ण बजता है। तर्जनी से स्याही के मध्य भाग में 'ट' आघात करके दबा देने से 'ट' वर्ण बजता है। 'ट' बजाते समय मध्यमा और अनामिका अँगुलियाँ ऊपर की ओर उठी होनी चाहिए।

© NCERT not to be republished

2. **तिरकिट** — इसकी ध्वनि दाहिने और बायें हाथ को मिलाकर निकलती है। डग्गे पर बायें हाथ की कलाई 'तिर' के समान 'तिट' को मैदान में रखते हुए, चारों अँगुलियों को आपस में मिलाते हैं और बायें तबले के किनारे पर मध्यमा और अनामिका अँगुलियों से आघात करते हैं। इससे 'कि' की ध्वनि निकलती है। इस प्रकार ध्वनि 'ट' जिससे आपस में मिलाकर दाहिने तबले की स्याही के मध्य में आघात करने पर 'तिरक' बोल बजता है। इस प्रकार संयुक्त रूप से तिरकिट बोल बजता है।
3. **गदिगन** — डग्गे पर बजाते हैं। 'दी' बजाते हुए दाहिने तबले पर चारों अँगुलियों को जोड़कर 'ग' बजाने के लिए दाहिने तबले पर स्याही के निचले भाग में 'न' बजाते हुए, 'ग' फिर से डग्गे पर 'गदिगन'। इस प्रकार मध्यमा और अनामिका अँगुलियों को जोड़कर स्पर्श करते हैं तो 'गदिगन' बोल बजता है।
4. **घिड़नग** — 'घे' या 'घि' बोल। 'घि' डग्गे पर बजाते हुए दाहिने, तबले पर मध्यमा और अनामिका अँगुलियों से स्याही के मध्य में आघात करके चाँट पर 'न' और 'ग' बोल बजाते हुए तर्जनी से डग्गे पर बजाएँगे। इस तरह 'घिड़नग' बोल बजता है।
5. **धागे तिट** — दाहिने और बायें तबले पर संयुक्त रूप से 'गे' बजाते हुए तर्जनी से डग्गे पर 'धा', बजाते हैं और दाहिने तबले पर जैसे ऊपर बताया गया है 'तिट' बोल बजाते हैं।
6. **दींदीं** — ये दाहिने तबले पर बजने वाला बोल है। दाहिने तबले पर स्याही के शीर्ष पर चारों अँगुलियों को मिलाकर दो बार आघात कर हाथ उठाने से 'दींदीं' बोल बजता है।

पखावज के बोल

चित्र 3.4–पखावज

भारतीय संगीत में प्राचीन काल से ही संगीत वाद्यों की एक समृद्ध परंपरा रही है। पखावज के वर्णों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि आरंभिक चरण में इसमें सिर्फ़ चार वर्ण थे — ता, दीं, थुं और ना।

ता — दाहिने हाथ के निचले हिस्से अर्थात् हथेली से दाहिनी पूड़ी पर पूरा और खुला आघात करने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि को 'ता' कहा जाता है। 'ता' वर्ण से ही लां, रां और ऊँ आदि वर्णों की भी ध्वनि आती है। आघात करने के इस प्रकार को थाप और थपिया भी कहा जाता है।

दीं — दाहिने हाथ की पाँचों अँगुलियों को एक साथ मिलाकर जब अंजुलि की तरह बनाकर पखावज की दाहिनी पूड़ी की स्याही पर खुला प्रहार करते हैं तो उससे निकलने वाली ध्वनि

© NCERT not to be republished

को 'दीं' कहते हैं। 'ल', 'व', 'म' और 'ह' आदि वर्णों के वादन के लिए भी इसी तकनीक का प्रयोग किया जाता है।

थुं — बायें हाथ की पाँचों अँगुलियों को एक साथ अंजुली जैसा मोड़कर जब पखावज के बायें मुख पर लगे आटे पर खुला प्रहार करते हैं तो उसे 'थुं' कहा जाता है। 'ग' और 'घ' वर्णों का वादन भी इसी प्रकार किया जाता है।

ना — दायें हाथ की तर्जनी अंगुली से पखावज के दाहिने मुख की चाँटी पर हलका प्रहार करते हैं तो उससे उत्पन्न ध्वनि को 'ना' कहा जाता है।

इन्हीं चार वर्णों के आधार पर पखावज पर बजने वाले अनेक वर्णों और बोलों की रचना हुई है। आधुनिक युग के अधिकांश विद्वान पखावज के कुल वर्णों की संख्या सात मानते हैं, जिनमें 'ता', 'दीं', 'थुं', 'ना' के अलावा 'ते', 'टे' और 'क' शामिल हैं।

ते — कनिष्ठा, अनामिका और मध्यमा अँगुलियों को एक साथ मिलाकर पखावज के दायें मुख पर बंद वादन करने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे 'ते', 'ति' और 'ट' कहा जाता है।

टे — तर्जनी अँगुली को अँगूठे के साथ संयुक्त करके पखावज के दायें मुख पर बजाने से निकलने वाली ध्वनि को 'टे', 'ट', 'र' आदि की संज्ञा दी जाती है।

ट — पखावज का 'ट' वर्ण अलग-अलग रचना प्रकारों में अलग-अलग तरह से बजता है। इसका ध्यान रखना होगा, जैसे— तिट के साथ 'क', 'ट' तर्जनी से बनेगा। जबकि तिरकिट और किटितक 'का' 'ट' कनिष्ठा, अनामिका और मध्यमा को संयुक्त करके बजेगा।

क, की और कत् — बायें हाथ की पाँचों अँगुलियों को एक साथ जोड़कर पखावज के बायें मुख पर बंद आघात करने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, वह 'क', 'की' और 'कत्' के अंतर्गत आती है।

चित्र 3.5–प्रसिद्ध पखावज वादक पंडित पुरुषोत्तम दास

पखावज के विद्यार्थियों को इस बात का विशेष ध्यान रखना होगा कि इसके पढ़ंत और बजंत में अर्थात् बोलने और बजाने में कई बार अंतर हो जाता है। जैसे तक्का थुंगा में 'त' बायें पर 'क' की तरह बजेगा और 'क' दाहिने पर 'ता' की तरह। अर्थात् बोलेंगे 'तक्का' और बजाएँगे 'का'। इसी तरह 'थुं' बायें पर बजेगा और 'गा' दाहिने मुख पर 'ता' की तरह। इसी तरह पखावज पर 'तकिट तका' बोल को 'कतिटकता' की तरह बजाते हैं।

धा — यह एक संयुक्त वर्ण है, जो दाहिने हाथ से 'ता' और बायें हाथ से 'ग' को एक साथ बजाने से ध्वनित होता है।

धुमकिट — यह पखावज का प्रमुख बोल है। 'धु' बायें मुख पर 'दीं' की तरह बजता है। 'म' दाहिने मुख पर बजता है। 'कि' बायें पर और 'ट' दाहिने तबले पर बजते हैं।

© NCERT not to be republished

संगीत संबंधी किसी भी नियम की बात करते समय यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि संगीत एक सृजनात्मक कला है और इसे कभी भी पूरी तरह नियमों, सिद्धांतों में नहीं बाँधा जा सकता है। दूसरी एक अत्यंत महत्वपूर्ण बात यह है कि यह याद रखना चाहिए कि शास्त्र हमेशा कला का अनुगामी होता है।

अभ्यास

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित वर्णों के निकास की विधि लिखिए—
   ति, तिं, दीं, र, न, गे, कि, कत्।
2. तबले और डग्गे पर बजाए जाने वाले निम्नलिखित बोलों के निकास की विधि लिखिए—
   तिर, तिरकिट, गदिगन, घिड़नग, धागेतिट, धिटधिट, किटतक
3. तबला और डग्गे के विविध स्थानों पर कौन-कौन से वर्ण बजते हैं? प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दीजिए—
   (क) चाँट (ख) लव
   (ग) तबले की स्याही (घ) डग्गे का मैदान

सही और गलत बताइए

1. तबला वाद्य पर बजने वाले मूलत: 16 वर्ण माने जाते हैं।
2. 'दीं' एक संयुक्त वर्ण है।
3. 'तीं' वर्ण तबले की लव पर बजाया जाता है।
4. 'तिट' बोल डग्गे की स्याही पर बजने वाला बोल है।
5. 'तिरकिट' एक ऐसा बोल है जो तबला और डग्गे पर बजता है।
6. 'तूना' बोल सिर्फ़ तबले पर बजाया जाता है।
7. 'क' वर्ण तबले की स्याही पर बजने वाला वर्ण है।
8. बोल का अर्थ ही वर्ण होता है।

© NCERT not to be republished

नाना पानसे

नाना पानसे का जन्म सतारा जनपद के वाई नामक स्थान के पास, बनधन (महाराष्ट्र) में हुआ था। इनकी जन्म तिथि के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। लेकिन, यह तय है कि यह उन्नीसवीं शताब्दी में रहे थे। इनका परिवार कीर्तनकारों का धार्मिक परिवार था, जिसके साथ पखावज की संगति हुआ करती थी। पखावज पर हाथ रखना सर्वप्रथम इनके पिता ने ही इन्हें सिखाया। बाद में पुणे के मान्याबा कोड़ीतकर, चौन्डे बुवा, मार्तंड बुवा, बाबू जोध सिंह और योगीराज माधव स्वामी से इन्होंने पखावज की शिक्षा ग्रहण की। कुछ लोगों का मानना है कि इनका वास्तविक नाम नारायण थोरपे था। घर में पुकारने का नाम नाना था और पाँच सौ लोगों को तबला एवं पखावज सिखाने के कारण इनके नाम के साथ 'पानसे' शब्द जुड़ गया।

नाना जीवन भर इंदौर के राज दरबार से जुड़े रहे। बहुत-से अन्य राजाओं ने भी उन्हें अपने दरबार में आमंत्रित किया तथा प्रलोभन भी दिए। किंतु नाना जीवनपर्यंत इंदौर में ही रहे। इंदौर के कृष्णपुरा नामक जिस मोहल्ले में नाना रहते थे, उस गली को आज भी पानसे गली के नाम से जाना जाता है। अपने शांत, सौम्य और निराभमानी स्वभाव के कारण नाना पानसे ने न तो किसी के साथ सांगीतिक प्रतियोगिता की और न किसी को पराजित ही किया।। नाना पानसे को पखावज के साथ-साथ तबला वादन का भी अच्छा ज्ञान था। अपने रचनात्मक कौशल का परिचय देते हुए नाना ने पखावज वादन की शैली में अनेक सुधारात्मक प्रयोग भी किए और अनेक रचनाएँ भी रचीं। प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर इन्होंने कई तालों के ठेकों का नवीनीकरण भी किया। लोगों का मानना है कि अँगुलियों पर मात्रा गिनने की परंपरा नाना ने ही आरंभ की थी। नाना पानसे ने पखावज, तबला और कथक नृत्य— तीनों में शिष्यों को तैयार किया था। इन्होंने 'सुदर्शन' नामक एक नवीन ताल की भी रचना की थी। नाना की रचनाओं में पखावज और तबले की निकटता सहज ही दिखती है। इनके द्वारा रचित बोल मधुर, कर्णप्रिय और कम परिश्रम से ही द्रुत गति में बजने योग्य हैं। नाना पानसे की परंपरा की रचनाएँ चमत्कारी और चित्ताकर्षक हैं। तकतक, धुमकिट, कीटितक, घिड़नग, तिरकिट, तगिन्न और गदिगन आदि जैसे बोलों का प्राधान्य उनकी रचनाओं में दिखता था। आड़ी लय और तीन-तीन बोलों के समूह वाली रचनाएँ भी इस परंपरा में प्रचलित हैं। ऐसी मान्यता है कि नाना का निधन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। आज मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में जो पखावज बज रहा है, उसका बहुत बड़ा श्रेय नाना पानसे और उनके सैकड़ों शिष्यों को जाता है।

© NCERT not to be republished

4 तबला एवं पखावज वाद्यों की उत्पत्ति एवं विकास

उत्तर भारतीय संगीत के सर्वाधिक लोकप्रिय अवनद्ध वाद्यों में तबला एवं पखावज का विशिष्ट स्थान है। इन दोनों ही वाद्यों की उत्पत्ति पर विचार करने से हमें यह ज्ञात होता है कि तबला एवं पखावज — ये संज्ञाएँ बहुत प्राचीन नहीं कही जा सकतीं। तो क्या ये वाद्य आधुनिक काल में निर्मित हुए हैं? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। प्रथमत: हम तबला वाद्य की चर्चा करते हैं

तबला शब्द अरबी भाषा की 'तब्ल' संज्ञा से आया है, जिसका अर्थ सामान्यत: 'सपाट सतह' से होता है। अरब में प्रचलित तबल सामी और अन्य अवनद्ध वाद्य लगभग नगाड़ों की तरह थे। इन वाद्यों में तबल का अर्थ सपाट सतह से ही है। जब जोड़ी वाद्य 'तबला' अठारहवीं शताब्दी के लगभग शास्त्रीय संगीत में लोकप्रिय हुआ तो इसके दोनों हिस्सों को मिलाकर 'तबला वाद्य' की संज्ञा प्रदान की गई। जैसा कि हमें विदित है, यह वाद्य दो वाद्यों का सम्मिलित स्वरूप है, जिनमें से एक को तबला या दाहिना तथा दूसरे को डग्गा या बायाँ कहा जाता है।

11153CH04

तबला वाद्य का आविष्कार

तबला वाद्य के आविष्कार से संबंधित कई मत-मतांतर विद्वानों में आरंभ से ही प्रचलित रहे हैं। तबला वाद्य के आविष्कार के संबंध में यह एक मत बहुत समय तक प्रचलित रहा कि पखावज को बीच से काटकर तबला वाद्य का निर्माण किया गया है। कालांतर में इस मत का खंडन करते हुए विद्वानों द्वारा यह तर्क दिया गया कि पखावज को बीच से काट देने पर उसका प्रत्येक भाग नीचे से, विदेशी वाद्य 'बौंगो' की तरह खुला रहेगा, जबकि तबले के दोनों भाग नीचे से बंद रहते हैं। अतः यह मत तबला वाद्य के आविष्कार के संबंध में स्वीकार नहीं किया जा सकता। कुछ विद्वानों के अनुसार, भारत में पौराणिक काल में दो भिन्न-भिन्न ध्वनि वाले नगाड़ों का वादन होता था, जिन्हें 'साम्ब' कहते थे। इनमें से एक को नर और दूसरे को मादा बताया गया है। संभव है कि तबले की जोड़ी की उत्पत्ति का आधार यही वाद्य रहा हो।

चित्र 4.1– तबला और सारंगी बजाते हुए कलाकार

© NCERT not to be republished

एक अन्य मत के अनुसार, अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी कवि और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य हज़रत अमीर खुसरो (1253 ई.–1325 ई. तक) को तबला वाद्य का आविष्कारक माना जाता है। लेकिन स्वयं अमीर खुसरो ने अपनी किसी पुस्तक में इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि उन्होंने किसी वाद्य का निर्माण किया है। इस आधार पर तेरहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो को तबला वाद्य का आविष्कारक नहीं माना जा सकता।

मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले (1719 से 1748 तक शासनकाल) के दरबार में सदारंग और अदारंग नामक दो प्रसिद्ध गायक हुए, जिन्होंने खयाल गायन शैली का प्रचार किया। खयाल गायन शैली के आविर्भाव से पहले ध्रुपद-धमार गायन शैली प्रचलित थी, जिसके साथ पखावज की संगति होती थी। पखावज वाद्य का ज़ोरदार और गंभीर नाद खयाल की संगति के अनुकूल नहीं समझा गया। आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति ने अपनी पुस्तक *मुसलमान और भारतीय संगीत* में स्पष्ट किया है कि प्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग के एक अन्य भाई, जिनका नाम खुसरो खाँ था, ने तबला सदृश्य वाद्य को शास्त्रीय संगीत में प्रचलित किया। डॉ. लालमणि मिश्र ने अपने शोध प्रबंध, *भारतीय संगीत वाद्य* में स्पष्ट किया है कि वास्तव में तबला सदृश्य वाद्य समाज में बहुत पहले से प्रचार में था, जो हुडुक्का के एक भेद के रूप में प्रचलित था। जयपुर (राजस्थान) के शासक सवाई प्रताप सिंह देव कृत *राधा गोविन्द संगीत सार* में इसका वर्णन मिलता है। डॉ. योगमाया शुक्ल और डॉ. अबान मिस्त्री ने अपने-अपने शोध प्रबंधों में भी तबला सदृश्य वाद्यों का प्रचलन बहुत पहले से भारतीय संगीत में प्रचलित होने के प्रमाण दिए हैं। डॉ. आबान ए. मिस्त्री की पुस्तक *पखावज और तबला के घराने एवं परंपराएँ* के अनुसार, महाराष्ट्र में भाजा गुफ़ा, जो संभवत: दूसरी शताब्दी ई.पू. में बनाई गई है, में एक स्त्री की मूर्ति उकेरी गई है, जो तबला-डग्गा सदृश्य जोड़ी वाद्य को अपनी कमर से बाँधकर बजा रही है। इन सभी विद्वानों के विचारों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि तबला सदृश्य जोड़ी वाद्य, दिल्ली पर मुस्लिम शासकों के गद्दीनशीन होने के बहुत पहले से भारतीय संगीत में अपनी प्रमुख भूमिका निभाता रहा है।

चित्र 4.2–तबला और वायलिन बजाते हुए कलाकार

पखावज वाद्य का आविष्कार

मृदंग या पखावज भारतीय संगीत का एक प्रमुख अवनद्ध वाद्य है, जिसकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक किवदंतियाँ प्रचलित हैं। किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* में सर्वप्रथम मृदंग का वर्णन त्रिपुष्कर वाद्य के रूप में मिलता है। वैदिक साहित्य में दुन्दुभी, भूदुन्दुभी

जैसे अवनद्ध वाद्यों का तो उल्लेख मिलता है, किंतु कहीं भी मृदंग शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि वैदिक काल में मृदंग का आविष्कार नहीं हुआ होगा, जबकि रामायण और महाभारत काल में वीणा और मृदंग का प्रचार था। तत्कालीन समाज के धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों का जो वर्णन मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि उन दिनों मृदंग काफ़ी प्रचलित था। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि वैदिक काल के बाद और रामायण काल के बहुत वर्ष पूर्व मृदंग का प्रयोग आरंभ हो गया होगा।

चित्र 4.3–महिला तबला वादक — अनुराधा पाल

भरतमुनि द्वारा रचित *नाट्यशास्त्र* में वर्णित त्रिपुष्कर वाद्य के तीन भाग थे— आंकिक, ऊर्ध्वक और आलिंग्य। दो ऊर्ध्वाधर खड़े भागों को ऊर्ध्वक और आलिंग्य, जबकि लेटे हुए भाग को आंकिक कहा जाता था, जो अंक अर्थात् गोद में रखकर बजाया जाता था। सातवीं शताब्दी के बाद धीरे-धीरे त्रिपुष्कर की इस आकृति में परिवर्तन होता गया और बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी तक वह पूरी तरह परिवर्तित हो चुका था। उससे ऊर्ध्वक और आलिंग्य हिस्से हट गए और आंकिक जो कि अंक में रखकर बजाया जाता था, वही भाग बच गया, जो आगे चलकर मृदंग के नाम से प्रचलित हुआ। वर्तमान में प्रचलित उत्तर भारत का मृदंग या पखावज तथा दक्षिण भारत का मृदंगम भरतकालीन त्रिपुष्कर वाद्य का ही एक परिष्कृत भाग है।

ऐसा अनुमान है कि भरत से लेकर शारंगदेव के समय तक जो 'जाति' और 'प्रबंध' गायन किसी न किसी रूप में प्रचलित था, उसमें मृदंग के ही विभिन्न रूपों का प्रयोग होता था। मध्यकालीन ध्रुपद गायन शैली में मृदंग का ही प्रयोग संगति के लिए किया जाता था, लेकिन मृदंग के स्थान पर पखावज शब्द का प्रयोग मध्ययुग से आरंभ हुआ। अनुमान किया जाता है कि मध्ययुग में ध्रुपद-धमार गायकी की संगति के लिए भरतकालीन मृदंग की आकृति एवं नाद में कुछ परिवर्तन हुआ होगा, जिसके फलस्वरूप वह पखावज कहलाने लगा होगा। यह परिवर्तन ध्रुपद-धमार गायकी के अनुरूप संगत की क्रियात्मक दृष्टि को लक्ष्य में रखकर, गंभीर नाद एवं रस उत्पत्ति हेतु हुआ होगा। अधिकांश विद्वान मानते हैं कि पखावज भरतकालीन मृदंग का ही परिष्कृत रूप है। भाषा की दृष्टि से मृदंग शास्त्रीय शब्द है और पखावज लोक व्यवहार में प्रयुक्त शब्द।

कुछ विद्वान मानते हैं कि पखावज शब्द 'पक्ष' वाद्य से बना है। यहाँ पर पक्ष का तात्पर्य भुजाओं से है। ऐसा माना जाता है कि दोनों भुजाओं के माध्यम से जिस वाद्य के दोनों मुखों पर बजाया जाता है,'पक्ष वाद्य' कहलाता होगा। कालांतर में बोलचाल की भाषा में पक्ष का 'पख' और वाद्य का 'बाज' हो गया होगा। इस प्रकार पखावज प्रचार में आया होगा। गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल में आज भी इस पखावज को 'पखवाज' कहते हैं।

© NCERT not to be republished

आंकिक का नाम पक्षावज और उसके बाद पखावज के रूप में प्रचलित हुआ।

चित्र 4.4–आंकिक द्विमुखी अवनद्ध वाद्य आकृति

वर्तमान में हुए शोध कार्यों से स्पष्ट है कि भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* में वर्णित त्रिपुष्कर वाद्य के ऊर्ध्वक और आलिंग्य भाग से वर्तमान के तबला जोड़ी का तथा आंकिक से उत्तर भारतीय वाद्य मृदंग या पखावज तथा दक्षिण भारतीय वाद्य मृदंगम् का विकास हुआ है।

दो हज़ार वर्षों में आवश्यकतानुसार इन दोनों वाद्यों में अनेक परिवर्तन हुए हैं। भरतकाल में इन वाद्यों के खोल मिट्टी से बनाए जाने का उल्लेख है। बाद में यह लकड़ी (काष्ठ) से निर्मित किए जाने लगे और अब आलिंग्य, जो वर्तमान डग्गा है, का शरीर पीतल, ताँबा अथवा मिट्टी से भी बनाया जाने लगा है।

चित्र 4.5–ऊर्ध्वक आलिंग्य एकमुखी

चित्र 4.6–ऊर्ध्वक एकमुखी आकृति

पंजाब प्रांत में तबले के बाँये को धामा कहते हैं, जिसमें आज भी आटा लगाने की परंपरा देखी जा सकती है। इससे यह सिद्ध होता है कि तबला और पखावज (पक्षावज) सदृश्य वाद्य, भारत में पहले से प्रचलित रहे हैं और परिवर्तनों के साथ ये आज भी न केवल प्रचलित हैं, अपितु अत्यंत लोकप्रिय भी हैं।

© NCERT not to be republished

मनुष्य का अभिनव चिंतन

भरतकालीन मृदंग को इच्छित स्वरों में मिलाने के लिए मृत्तिका (मिट्टी) लेपन का प्रावधान किया गया था। मिट्टी के अतिरिक्त या मिट्टी की अनुपलब्धता की स्थिति में गुड़ और चावल का लेप प्रयुक्त करने की बात कही गई है। बहुत बाद में जब लौहचूर्ण उपलब्ध हो गया तब इसका प्रयोग स्याही के लिए तबला और पखावज, दोनों ही वाद्यों में किया जाने लगा। पखावज के दाहिने हिस्से में और तबले पर इस लौह चूर्ण को आटा अथवा चावल की माढ़ में मिलाकर लेपन करने से दोनों ही वाद्यों की नादात्मकता में बहुत ही सकारात्मक परिवर्तन आए हैं।

पखावज द्विमुखी अवनद्ध वाद्य है, परंतु इसका शरीर एक ही है। अतएव इसके दोनों मुखों पर लगाई जाने वाली पूड़ी एक ही रस्सी अथवा बद्धी से कसी जाती है। इसके दाहिने मुख पर तबला सदृश्य स्याही का लेपन किया जाता है। यदि इस वाद्य के बाँये मुख पर भी लौहचूर्ण युक्त स्याही लगाई जाए तो दोनों मुखों को संवादी रूप में इच्छित स्वरों में मिलाना संभव नहीं होगा। अत: विद्वानों ने विचारपूर्वक तय किया कि बाँये मुख पर गेहूँ का आटा सानकर उसकी एक पुलिका लगाई जाए। आटे की मात्रा को कम या ज़्यादा कर दाहिने के संवादी स्वर को प्राप्त किया जाता है। यह आटे की पुलिका कार्यक्रम के पहले लगाई जाती है और कार्यक्रम समाप्ति के बाद उसे निकाल दिया जाता है।

अभ्यास

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. तबला वाद्य किस शताब्दी में लोकप्रिय हुआ?
   (क) पंद्रहवीं शताब्दी　(ख) सोलहवीं शताब्दी
   (ग) सत्रहवीं शताब्दी　(घ) अठारहवीं शताब्दी
2. प्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग के भाई का नाम क्या था?
   (क) अमीर खुसरो　(ख) भरत
   (ग) खुसरो खाँ　(घ) विलायत हुसैन
3. *भारतीय संगीत वाद्य* पुस्तक के लेखक कौन हैं?
   (क) भरतमुनि　(ख) आचार्य बृहस्पति
   (ग) लालमणि मिश्र　(घ) प्रेमलता शर्मा
4. भरतमुनि द्वारा रचित ग्रंथ कौन-सा है?
   (क) *संगीत रत्नाकर*　(ख) *बृहद्देशी*
   (ग) *नाट्यशास्त्र*　(घ) *दत्तिलम*
5. पखावज को प्राचीन काल में किस नाम से जाना जाता था?
   (क) आलिंग्य　(ख) आंकिक
   (ग) ऊर्ध्वक　(घ) एकमुखी

© NCERT not to be republished

6. भरतकाल में वाद्यों के खोल किससे बनाए जाते थे?
   (क) लकड़ी (ख) मिट्टी
   (ग) काँसा (घ) ताँबा
7. पखावज के बायें मुख पर किसका लेप लगाया जाता है?
   (क) लौह चूर्ण (ख) स्याही
   (ग) गीला आटा (घ) इनमें से कोई नहीं
8. मृदंग वाद्य किस श्रेणी के अंतर्गत आता है?
   (क) तत् (ख) घन (ग) सुषिर (घ) अवनद्ध
9. आबान ए. मिस्त्री किस वाद्य की विशेषज्ञ रही थी?
   (क) तबला (ख) पखावज (ग) ढोलक (घ) हारमोनियम
10. *राधा गोविन्द संगीत सार* के लेखक कौन थे?
   (क) योगमाया शुक्ल (ख) सवाई प्रताप सिंह
   (ग) जयदेव (घ) तानसेन

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. तबला शब्द किस भाषा और संज्ञा से लिया गया है?
2. भरतमुनि ने किस ग्रंथ की रचना की है?
3. पंजाब प्रांत में तबले के बायें को क्या कहा जाता है?
4. तबला तथा पखावज वाद्य किस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं?
5. अमीर खुसरो किसके दरबारी कवि थे?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शास्त्रीय संगीत में तबला वाद्य की भूमिका को समझाइए।
2. आंकिक शब्द से आप क्या समझते हैं? परिभाषित कीजिए।
3. तबला एवं पखावज के विभिन्न अंगों के नाम लिखिए।
4. क्या आपने कभी कोई त्रिभुजी वाद्य देखा है? उसका सचित्र वर्णन कीजिए।
5. कुछ प्रसिद्ध तबला वादकों के विषय में विस्तारपूर्वक लिखिए।
6. तबला एवं पखावज वाद्य की समानताओं और असमानताओं पर प्रकाश डालिए?

© NCERT not to be republished

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. भरत का काल लगभग -- शताब्दी माना जाता है।
2. पखावज के दाहिने मुख पर --- का लेपन किया जाता है।
3. ------------------------------------- ग्रंथ में मृदंग का उल्लेख प्राप्त होता है।
4. आंकिक को वर्तमान में ------------------------------------ नाम से जाना जाता है।
5. प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो का समयकाल ----------------------------------- रहा।

सुमेलित कीजिए

(क) कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति	1. *पखावज और तबला के घराने एवं परंपराएँ*
(ख) आबान ए. मिस्त्री	2. *नाट्यशास्त्र*
(ग) लालमणि मिश्र	3. *मुसलमान और भारतीय संगीत*
(घ) सवाई प्रताप सिंह देव	4. *भारतीय संगीत वाद्य*
(ङ) भरतमुनि	5. *राधा गोविन्द संगीत सार*

विद्यार्थियों हेतु गतिविधि

1. अपने क्षेत्र के किसी ऐतिहासिक स्मारक को देखने जाइए। वहाँ दीवारों पर बने चित्र, मूर्तिकला और शिल्पकला को अच्छी तरह देखें। क्या कोई वाद्य यंत्र बजाते हुए दिख रहा है? चित्र किसी अवनद्ध वाद्य, सुषिर वाद्य, तंतु वाद्य का हो सकता है। उस वाद्य का छायाचित्र लेकर विवरण दीजिए तथा उपरोक्त बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए एक परियोजना तैयार कीजिए।
2. पखावज या तबला वादक से बातचीत कीजिए और पूछिए कि किस तरह से वे अपने वाद्य की देख-रेख करते हैं। आज के युग में उनकी क्या समस्याएँ हैं?
3. ऊर्ध्वक अवनद्ध वाद्य, आलिंग्य अवनद्ध वाद्य, आंकिक द्विमुखी अवनद्ध वाद्य के चित्र बनाइए।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में बजाए जाने वाले कुछ अवनद्ध वाद्यों के चित्र बनाइए एवं उनके नाम बताइए। किस परिवार के लोग इसे बजाते हैं?
5. क्या अवनद्ध वाद्य से निकली गूँज विज्ञान से संबंधित है? बताइए कैसे?

शोध एवं विचार

1. पखावज के पूड़ी पर आटा लगाने का कारण बताइए।
2. तबले की पूड़ी पर लौह चूर्ण लगाने के कारण बताइए।

© NCERT not to be republished

कुदऊ सिंह

महान पखावज वादक कुदऊ सिंह की जन्म एवं मृत्यु तिथि (एक अनुमान के अनुसार) क्रमश: 1812 एवं 1907 है। बचपन में ही माता-पिता के स्नेह से वंचित हो चुके कुदऊ सिंह को पखावज की शिक्षा मथुरा के प्रसिद्ध पखावज गुरु भवानी दीन से मिली, जिन्हें कहीं-कहीं भवानी सिंह या भवानी दास के नाम से भी जाना जाता है। सन् 1847 में, अवध के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह ने उनके पखावज वादन पर प्रसन्न होकर इन्हें 'सदा कुंवर' (कुंवर दास) की उपाधि प्रदान की थी। अपने समकालीन प्रसिद्ध पखावजी जोध सिंह को एक प्रतियोगिता में परास्त कर इन्होंने एक लाख रूपये का पुरस्कार जीता था। रीवा के राजा ने उनके एक परन पर प्रसन्न होकर, उन्हें पुरस्कार स्वरूप सवा लाख रूपया दिया था।

कुदऊ सिंह को रीवा, रामपुर, झांसी, बांदा, कवर्धा और दतिया आदि के राजाओं का संरक्षण प्राप्त था। दतिया के राजा भवानी सिंह ने ही इन्हें 'सिंह' की उपाधि दी थी। कुदऊ सिंह ने गुरु द्वारा प्राप्त पखावज वादन की शिक्षा में, बहुत कुछ अपनी ओर से जोड़कर अपनी एक नवीन शैली विकसित की और स्वयं को मृदंग सम्राट के रूप में स्थापित किया। इनकी वादन शैली ओजपूर्ण और गंभीर थी, जिसमें हथेली का प्रयोग अधिक होता है। ज़ोरदार, क्लिष्ट और एक-दूसरे से गुँथे हुए वर्णों से निर्मित लंबी-लंबी परन इस परंपरा में प्रचलित हैं। साहित्य की दृष्टि से भी ये परनें उच्चकोटि की होती हैं। धड़गण, धड़न्न, तड़न्न, धिलांग, धुमकिटतक, क्रिधित, तक्काथुंग जैसे बोलों का इस परंपरा में अधिक प्रयोग होता है। कुदऊ सिंह परंपरा का बाज खुला बाज है और इसका प्रचार-प्रसार लगभग समस्त भारत में है।

कुदऊ सिंह अनेक अविश्वसनीय जनश्रुतियों के केंद्र थे। ये मूलत: कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके वंशज अपना उपनाम शर्मा लिखते हैं। कहते हैं कि अपनी पुत्री के विवाह में दामाद काशी प्रसाद को चौदह सौ परन इन्होंने उपहार स्वरूप दिए थे, जिन्हें पुत्री धन समझकर फिर कभी नहीं बजाया। कुदऊ सिंह ने समस्त भारत के सैकड़ों लोगों को पखावज वादन की शिक्षा दी। इनके प्रमुख शिष्यों में, इनके छोटे भाई राम सिंह, भतीजे जानकी प्रसाद और दामाद काशी प्रसाद का नाम आदर से लिया जाता है। जानकी प्रसाद के पुत्र गया प्रसाद और पौत्र पद्मश्री पंडित अयोध्या प्रसाद श्रेष्ठ पखावजी हुए। पंडित अयोध्या प्रसाद के सबसे छोटे पुत्र पंडित रामजी लाल शर्मा वर्तमान में इस परंपरा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

© NCERT not to be republished

नाट्यशास्त्र में अवनद्ध वाद्य

भरतमुनि द्वारा रचित *नाट्यशास्त्र*, जो वस्तुत: नाट्यकला से संबंधित ग्रंथ है, में तत्कालीन संगीत में प्रयुक्त होने वाले अनेक अवनद्ध वाद्यों का वर्णन किया गया है। भरत का काल (ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से दूसरी शताब्दी ईसवी के बीच) लगभग दो हज़ार वर्ष पुराना माना जाता है।

भरत ने अवनद्ध वाद्यों को पुष्कर वाद्य कहा है। भरत के अनुसार, सौ से भी अधिक अवनद्ध वाद्य तत्कालीन संगीत में प्रचलित थे। इच्छित स्वरों में मिलाए जा सकने योग्य अवनद्ध वाद्यों को अंग तथा अन्य को प्रत्यंग वाद्यों के रूप में वर्णित किया गया है। *नाट्यशास्त्र* के 34वें अध्याय के अंतर्गत तत्कालीन संगीत में प्रचलित अनेक अवनद्ध वाद्यों का विस्तृत वर्णन हमें प्राप्त होता है।

भरत द्वारा दी गई एक कथा के अनुसार, स्वाति नाम के ऋषि वर्षाकाल में जब तालाब अर्थात् पुष्कर में स्नान करने गए थे तो तालाब में उगे कमल के विभिन्न आकार के पत्तों पर पड़ने वाली वर्षा की बूँदों से उत्पन्न होने वाली विभिन्न ध्वनियों को सुनकर, उन्हें अवनद्ध वाद्यों की निर्मिति का विचार आया। विश्वकर्मा की सहायता से ऐसे वाद्यों का निर्माण किया गया। पुष्कर (तालाब) से प्राप्त कल्पना के कारण इन्हें पुष्कर वाद्य कहा गया।

मृदंग, पणव, पटह, दर्दुर तथा झल्लरी जैसे अवनद्ध वाद्यों की बनावट, वाद्य निर्माण में लगने वाली सामग्री, इच्छित स्वरों में मिलाए जाने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली मिट्टी की विशेषताएँ, बजाए जाने वाले विभिन्न वर्णों तथा उनके संयोग से बनने वाले विभिन्न वर्ण समूह, उनकी वादन विधि— इन सबका जिस विस्तार तथा गहनता से विचार किया गया है, उससे उस काल में अवनद्ध वाद्यों की उत्कृष्टता और महत्व का पता चलता है।

भरत ने सर्वप्रथम 'मृदंग' वाद्य का वर्णन किया है। जो वस्तुत: 'तीन' वाद्यों का सम्मिलित रूप है, जिन्हें क्रमश: आंकिक, ऊर्ध्वक और आलिंग्य कहा गया है। आंकिक, वर्तमान मृदंग (पखावज) सदृश्य द्विमुखी वाद्य था, जबकि ऊर्ध्वक और आलिंग्य एकमुखी ऊर्ध्वकार वाद्य थे, जैसे कि, वर्तमान समय में तबला-डग्गा। भरत के परवर्ती काल में मृदंग का आंकिक रूप ही प्रचार में रहा, जबकि ऊर्ध्वक और आलिंग्य 'जोड़ी वाद्य' के रूप में, लोक में विभिन्न आकार-प्रकारों में प्रचलित रहे। यूँ देखा जाए तो प्रथम अवनद्ध वाद्य दुन्दुभी ही था, आगे चलकर इसी से एकमुखी वाद्यों की जोड़ी प्रचलन में आई होगी, जिन्हें ऊर्ध्वक और आलिंग्य के रूप में जाना गया होगा। आंकिक सदृश्य वाद्य निश्चय ही इसके पश्चात् निर्मित हुआ होगा। भरत ने जिसे मृदंग कहा है, वह वस्तुत: आंकिक, ऊर्ध्वक और आंलिग्य का सम्मिलित रूप है। अवश्य ही यह एक उन्नत वाद्य था, क्योंकि इसे इच्छित स्वरों में मिलाया जा सकता था। मृदंग के तीनों हिस्सों के सम्मिलित रूप को 'त्रिपुष्कर' संज्ञा प्रदान की गई है। वहीं,

चित्र 4.7–दक्षिण भारत का अवनद्ध वाद्य — तविल

मृदंग, पणव और दर्दुर को सम्मिलित रूप से 'पुष्करत्रयी' कहा गया है। स्पष्ट है कि ये तीनों वाद्य तत्कालीन 'मार्ग संगीत' में अत्यधिक महत्वपूर्ण थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व भी अवनद्ध वाद्यों का संगीत में न केवल महत्वपूर्ण स्थान था, अपितु उसका एक विस्तृत और अनुभवसिद्ध शास्त्र भी था।

चित्र 4.8–तबला बनाते हुए कारीगर का कौशल

पणव— पणव वाद्य को भी अंग वाद्य के रूप में ही कहा गया है। मध्यकाल का हुडुक्का वाद्य ही थोड़े बहुत अंतर के साथ प्राचीन पणव था। इस द्विमुखी डमरू आकृति के वाद्य की लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ (दो से ढाई फ़ुट) होती थी जिसके दोनों मुखों पर चमड़ा एक ही डोरी से कसा रहता था। इसे बजाते समय इसके मुख पर हाथ या डण्डी से आघात कर रस्सी को दबाकर या ढीला करते हुए विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति की जाती थी।

पटह— वर्तमान काल के ढोलक से इसका रूप साम्य समझना चाहिए। यह अत्यंत लोकप्रिय वाद्य था। तत्कालीन शास्त्रीय संगीत के साथ ही लोक संगीत में इसका प्रचलन अत्यधिक था। इसे प्रत्संग वाद्य ही माना गया है, क्योंकि स्याही (मिट्टी लेपन) का प्रयोग नहीं होने से इसमें 'आंस' कम होती होगी और बहुत सटीक रूप में इसे इच्छित स्वर में मिलाना तब संभव नहीं रहा होगा।

दर्दुर— दर्दुर अंग वाद्य के रूप में प्रसिद्ध था। 'घट' आकार के इस वाद्य के मुँह पर बाँस की (वृत्ताकार) रिंग बनाकर उसमें कसकर इसे रस्सी की सहायता से कस दिया जाता था। इसे दोनों हाथों के आघात से बजाया जाता है। परवर्ती काल में इसमें लगाए जाने वाले चमड़े की पूड़ी का प्रयोग समाप्त हो गया और मात्र घट के रूप में यह उत्तर भारत में घड़े (मटके) के रूप में तथा कर्नाटक संगीत में घटम् के रूप में प्रचलित हुआ। कर्नाटक संगीत में मृदंग के समक्ष ही इसका महत्व माना जाता है।

झल्लरी— यह एक प्रत्यंग वाद्य है। इसका जो रूप भरत ने कहा है, उस आधार पर हम कह सकते हैं कि यह वर्तमान डफ या खंजरी सदृश्य वाद्य रहा होगा। इसमें लगे चमड़े को एक हाथ की अँगुलियों से दबाकर दाहिने हाथ से आघात कर विभिन्न प्रकार के नाद वैविध्य का आनंद लिया जा सकता है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तो इसका प्रयोग नहीं होता, किंतु कर्नाटक संगीत में गायन या स्वर वाद्य की संगति में इसका बहुतायत में प्रयोग होता है।

उपरोक्त के अतिरिक्त झंझा, दुन्दुभी, डिंडिम, भेरी आदि अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख भी प्रत्यंग वाद्यों के रूप में किया गया है। एक स्वर वाद्य को भी भेरी कहा गया है, किंतु यहाँ उल्लिखित भेरी वाद्य अवनद्ध वाद्य ही है।

© NCERT not to be republished

5 ताल-लिपि पद्धति एवं विभिन्न ठेके

मानव ने सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्रयास किया कि उसके उपार्जित अनुभव और विचार भविष्य के लिए भी संचित रह सकें। संभवतः लिपि का जन्म इसी का परिणाम है। संगीत को लिपिबद्ध करना ही संगीत की रचनाओं को सुरक्षा कवच पहनाना है। लिपिबद्ध होने से बंदिश के मूल स्वरूप की रक्षा होती है। यही बात उसके एक मुख्य अंग ताल के साथ भी है। राग और ताल संबंधित क्रियात्मक रचनाओं को व्यवस्थित रीति से विभिन्न संकेतों द्वारा लिपिबद्ध करके समय-समय पर कई लिपि पद्धितियों का निर्माण विद्वानों द्वारा किया गया है। आधुनिक काल अर्थात् अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी में, मौलाबख्श, सौरेन्द्र मोहन टैगोर, क्षेत्र मोहन गोस्वामी, पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर तथा पंडित विष्णु नारायण भातखंडे जैसे विद्वानों ने संगीत को लिपिबद्ध करने के लिए अलग-अलग लिपि पद्धतियाँ अपनाईं।

11153CH05

क्या आपने किसी स्वरलिपि के नीचे इन चिह्नों को देखा है— ×, 0, 2, 3...? आओ समझते हैं कि इन चिह्नों का हमारे संगीत में क्या महत्व है।

पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने विभिन्न ताल में निबद्ध रचनाओं को लिखने के लिए ताल लिपि का निर्माण किया। यह सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रचलित लिपि है।

पंडित विष्णु नारायण भातखंडे द्वारा बनाई गई ताल-स्वर लिपि पद्धति की विशेषताएँ निम्न हैं—

- प्रथम मात्रा से अंतिम मात्रा तक को ताल चिह्नों एवं ठेके के बोलों सहित प्रदर्शित किया जाता है।
- उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में ताल की प्रथम मात्रा हमेशा ही सम होती है। इस ताल पद्धति में सम के चिह्न को दर्शाने के लिए '×' का प्रयोग किया जाता है।
- खाली के चिह्न को दर्शाने के लिए '0' का प्रयोग किया जाता है। खाली एक से अधिक होने पर भी उसे '0' से ही प्रदर्शित किया जाता है। रूपक ताल में पहली मात्रा पर खाली होती है, किंतु वह सम भी है। अतएव रूपक में प्रथम मात्रा पर खाली का चिह्न प्रदर्शित किया जाता है और इसलिए चौथी मात्रा पर प्रथम ताली के रूप में ताली की संख्या एक '1' लिखी जाती है तथा छठी मात्रा पर दूसरी ताली होती है।

रूपक ताल का उदाहरण—

तिं	तिं	ना	धी	ना	धी	ना
⊗			1		2	

© NCERT not to be republished

- ताल के विभागों को अलग करने के लिए खड़ी पाई अर्थात् '।' चिह्न का प्रयोग किया गया है।
- विभागों में ताली के लिए ताली की संख्या लिख दी जाती है। जैसे त्रिताल में पाँचवीं और तेरहवीं मात्रा पर दो और तीन की संख्या लिख दी जाती है। उदाहरण के लिए, त्रिताल में ठेका—

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	1
बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा	धा
चिह्न	x				2				0				3				x

- विश्रांति या ठहराव के लिए 'ऽ' के चिह्न का प्रयोग होता है। यदि किसी बोल को दो मात्रा काल तक गाया या बजाया जाना है तो उस विस्तार को दर्शाने के लिए ऽ चिह्न का प्रयोग किया जाता है, जैसे— धा ऽ, धीं ऽ, । तीन मात्रा के लिए धा ऽ ऽ या धिं ऽ ऽ। चार मात्रा के लिए धा ऽ ऽ ऽ, धिं ऽ ऽ ऽ, ता ऽ ऽ ऽ, तिं ऽ ऽ ऽ आदि।
- एक मात्रा में एक वर्ण के लिए अलग से कोई चिह्न नहीं लगाया जाता है, जैसे— धा, धीं, ती आदि।
- एक मात्रा काल में एक से अधिक स्वर या बोल होने पर उनके नीचे अर्धचन्द्र '◡' लगाया जाता है, जैसे—

1	2	3	4 ....
कन्हैया	ऽऽ	तोरी	सावरी ....

पंडित विष्णु नारायण भातखंडे

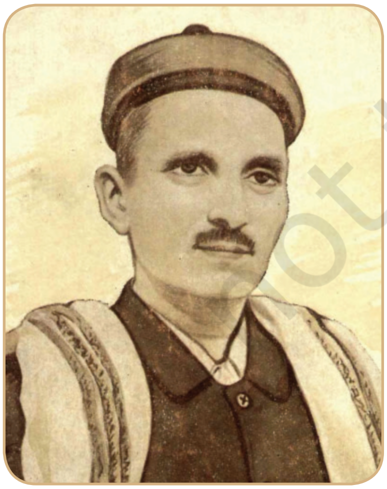

चित्र 5.1– पंडित विष्णु नारायण भातखंडे

पंडित विष्णु नारायण भातखंडे का जन्म 10 अगस्त, 1860 को वालकेश्वर, मुंबई में हुआ। अपने बचपन से ही उन्होंने संगीत में गायन और बाँसुरी में महारत हासिल की, बाद में उन्होंने सितार वादन की शिक्षा भी प्राप्त करना प्रारंभ किया और एक कुशल सितार वादक के रूप में लोकप्रिय हुए। बी.ए. तथा एल.एल.बी. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर पंडित भातखंडे ने कराची में वकालत प्रारंभ की। इन सबके बीच भी संगीत से उनका अटूट नाता बना रहा।

संगीत के शास्त्रीय पक्ष की ओर संगीतज्ञों का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय विष्णु नारायण भातखंडे को जाता है। उन्होंने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया और संगीत के प्राचीन ग्रंथों की खोज की। यात्रा में जहाँ भी उन्हें संगीत का कोई विद्वान मिला, उससे सहर्ष मिलने गए, भावों का विनिमय किया और जो कुछ भी

© NCERT not to be republished

ज्ञान धन देकर, सेवा अथवा शिष्य बनकर भी प्राप्त हो सका, उन्होंने नि:संकोच प्राप्त किया। क्रियात्मक संगीत को लिपिबद्ध करने के लिए भातखंडे ने एक सरल और नवीन स्वरलिपि की रचना की, जो भातखंडे स्वरलिपि पद्धति के नाम से प्रसिद्ध है। यह अन्य की तुलना में सरल और सुबोध है। पं. भातखंडे ने सन् 1916 में बड़ौदा नरेश की सहायता से प्रथम संगीत सम्मेलन सफलतापूर्वक आयोजित किया। उनके द्वारा रचित पुस्तकें— *हिंदुस्तानी संगीत पद्धति, भातखंडे संगीत शास्त्र* चार भागों में, *अभिनव राग मंजरी, श्रीमल्लक्ष्य संगीतम्, स्वरमालिका* हैं। उपरोक्त पुस्तकों एवं ग्रंथों की रचना के अतिरिक्त राग वर्गीकरण का एक नवीन प्रकार— थाट राग वर्गीकरण को प्रचारित करने का श्रेय विष्णु नारायण भातखंडे को जाता है। उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से समस्त रागों को दस थाटों में विभाजित किया— बिलावल, कल्याण, खमाज, भैरव, भैरवी, काफी, आसावरी, तोड़ी, पूर्वी और मारवा।

पंडित भातखंडे ने इस विचार से, "केवल श्रव्य रूप में उपलब्ध होने के कारण प्राचीन बंदिशों का लोप होता जा रहा है", बंदिशों को संरक्षित एवं संग्रहित करने के लिए एक संगीत लिपि का निर्माण किया, जिसके आधार पर वे उस्तादों की बंदिशों को सुनकर लिपिबद्ध कर लेते थे तथा उन्हें यथावत प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे। सन् 1909 में उन्होंने *लक्ष्य संगीतम* तथा *हिंदुस्तानी संगीत* का प्रथम भाग प्रकाशित किया। तत्पश्चात् *स्वरचित लक्षणगीतों* का एक संग्रह प्रकाशित कराया। उनके सद्प्रयासों से बड़ौदा में एक संगीत विद्यालय की स्थापना हुई। पंडित भातखंडे के सहयोग से ही ग्वालियर नरेश ने 1918 में माधव संगीत विद्यालय की स्थापना की। सन् 1926 में अनेक संगीत प्रेमियों के सहयोग से लखनऊ में मैरिस कॉलेज ऑफ़ हिंदुस्तानी म्यूज़िक के नाम से एक शिक्षण संस्थान प्रारंभ हुआ। जो आज भातखंडे संगीत संस्थान समविश्वविद्यालय के रूप में संचालित है। संगीत विचारक, उद्धारक तथा संगीत के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाली इस महान विभूति का मुंबई में सन् 1936 में देहावसान हो गया।

तालों का उनके ठेकों सहित विवरण

संगीत में समय नापने के साधन को ताल कहते हैं। यह संगीत में व्यतीत हो रहे समय को मापने का एक महत्वपूर्ण साधन है जो भिन्न-भिन्न मात्राओं, विभागों, ताली और खाली के योग से बनता है। ताल संगीत को अनुशासित करता है। संगीत को एक निश्चित स्वरूप देने में ताल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है और इन तालों को उनके ठेकों द्वारा पहचाना जाता है। उत्तर भारतीय संगीत में प्रयुक्त तालों के ठेके होते हैं जो इसकी निजी विशेषता है। किसी भी ताल का वह मूल बोल जिसके द्वारा उस ताल की पहचान होती है, उस ताल का ठेका कहलाती है। किसी ताल के ठेके की रचना उस ताल की प्रकृति, यति-गति, ताली, खाली, विभाग आदि को ध्यान में रखकर की जाती है। यद्यपि उत्तर भारतीय तालों के ठेकों में कहीं-कहीं विरोधाभास भी दृष्टिगत होता है। कुछ प्रचलित तालों को छोड़ दिया जाए तो कई तालों के अलग-अलग ठेके भी प्रचार में देखने को मिलते हैं।

© NCERT not to be republished

प्राचीन काल से जब संगीत का विकसित रूप समाज में प्रचलित हुआ, उसके बहुत बाद इसके शास्त्र पक्ष का लेखन भी आरंभ हुआ। भरतमुनि द्वारा रचित *नाट्यशास्त्र* वह पुराना ग्रंथ है जिसमें संगीत के शास्त्र की महत्वपूर्ण चर्चा की गई है। ऐसे तो *नाट्यशास्त्र* मूलत: नाट्यशास्त्र को प्रदर्शित करता है, किंतु इसमें संगीत का भी समग्र विवेचन हमें मिलता है, जिससे यह भी सुनिश्चित होता है कि लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व के नाटकों में संगीत एक मुख्य घटक के रूप में प्रचलित था।

मध्यकालीन समय का संक्षिप्त विवरण

संगीत को लिखित रूप में समझाने के लिए लिपि की आवश्यकता हुई जो सांगीतिक स्वर, लय, ताल तथा प्रबंध आदि को लिखित रूप में प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक हो गई। *नाट्यशास्त्र* में केवल तालों की चर्चा करते समय लघु, गुरु और प्लुत से क्रमश: एक मात्रा, दो मात्रा एवं तीन मात्राओं को प्रदर्शित किया गया है तथा इनके चिह्न क्रमश: 1, ऽ, ऽ निश्चित किए गए हैं। *नाट्यशास्त्र* के पश्चात् भी इस दिशा में प्रयास होते रहे, जिनमें मुख्य रूप से *बृहद्देशीकार मतंग* तथा *संगीत रत्नाकर* के रचयिता शारंगदेव का योगदान उल्लेखनीय है।

वैदिक	लघु	गुरु	प्लुत
मात्रा काल	1 मात्रा	2 मात्रा	3 मात्रा

आधुनिक काल अर्थात् अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में, मौलाबख्श, सौरेन्द्र मोहन टैगोर, डाहयालाल शिवराम आदि ने संगीत को लिपिबद्ध करने के लिए नवीन पद्धतियाँ अपनाईं।

उन्नीसवीं शताब्दी में दो महान विभूतियों का जन्म हुआ, जिन्हें हम पंडित विष्णु नारायण भातखंडे तथा पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के नाम से जानते हैं। इन दोनों विभूतियों ने महसूस किया कि शास्त्रीय संगीत की शिक्षा सर्व सामान्य को सहज रूप में उपलब्ध नहीं है। अत: पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने विभिन्न विद्वानों और संगीत प्रेमी पूंजीपतियों की मदद से बड़ौदा, ग्वालियर, लखनऊ आदि स्थानों पर संगीत की विद्यालयी शिक्षा का सूत्रपात किया। वहीं दूसरी ओर पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने लाहौर में, 1901 में गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना कर संगीत शिक्षण को साधारण लोगों के लिए सुलभ कराया।

इन दोनों संगीतोद्धारक विभूतियों ने इस बात को समझा कि विद्यालयी शिक्षा में संगीत सिखाते समय सहज और सरल संगीत लिपि आवश्यक होगी। विष्णु द्वय ने अपने-अपने तरीके से संगीत लिपियों का प्रचार एवं प्रसार किया जिनमें से पंडित विष्णु नारायण भातखंडे द्वारा निर्मित संगीत पद्धति को भातखंडे स्वर या ताल लिपि पद्धति; पलुस्कर द्वारा प्रणीत पद्धति को पलुस्कर स्वर या ताल लिपि पद्धति कहा गया।

इनमें से भातखंडे संगीत लिपि पद्धति सहज और सरल होने के कारण ज़्यादा प्रचलित हुई। पंडित पलुस्कर के दो प्रसिद्ध शिष्यों, पंडित ओंकारनाथ ठाकुर तथा पंडित विनायक राव पटवर्धन

not to be republished © NCERT

ने पलुस्कर संगीत लिपि पद्धति में अपनी दृष्टि से कतिपय परिवर्तन कर प्रकाशित पुस्तकों में उन लिपियों का उपयोग किया। इसके बाद पद्मभूषण पंडित निखिल घोष ने भी एक संगीत लिपि पद्धति का निर्माण किया। वहीं, बीसवीं शताब्दी के श्रेष्ठतम तबला वादक उस्ताद अहमद जान थिरकवा के वरिष्ठ शिष्य पंडित नारायण जोशी ने तबले की रचनाओं को उनके निकास संबंधी चिह्नों का प्रयोग करते हुए एक लिपि निर्मित की।

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि पंडित विष्णु नारायण भातखंडे के सद्प्रयासों से विभिन्न स्थानों पर संगीत विद्यालयों या महाविद्यालयों का प्रारंभ हुआ, जिनकी एक लंबी शृंखला बनी। इनमें भातखंडे के द्वारा रचित ग्रंथ *क्रमिक पुस्तक मालिका, हिन्दुस्तानी संगीत, लक्षण गीत संग्रह* इत्यादि का प्रचलन शिक्षण प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुआ। अतएव भातखंडे स्वर या ताल लिपि पूरे देश में अधिक प्रचलित हुई।

उत्तर भारतीय संगति में तबले पर बजाई जाने वाली प्रचलित प्रमुख तालों के ठेकों का विवरण निम्न प्रकार है—

त्रिताल (तीनताल)

त्रिताल अथवा तीनताल तबले का सर्वाधिक महत्वपूर्ण, लोकप्रिय एवं प्रचलित ताल है। शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत और फ़िल्म संगीत तक में इसका प्रयोग होता है। यह उन गिने-चुने तालों में से है, जिसका प्रयोग विलंबित से द्रुत लय तक में होता है। तिलवाड़ा, पंजाबी अद्धा एवं जत (16 मात्रा) आदि ताल भी त्रिताल के ही प्रकार हैं। दक्षिण भारत का आदिताल और उत्तर भारत का त्रिताल कई दृष्टि से समान हैं। दोनों ही अत्यंत प्राचीन ताल हैं। त्रिताल में 16 मात्राएँ होती हैं जो 4/4/4/4 मात्राओं में विभाजित होती हैं। अत: यह सम पदीताल है। इसमें पहली, पाँचवीं और तेरहवीं मात्रा पर ताली तथा नौवीं मात्रा पर खाली होती है। यह चतस्त्र जाति की ताल है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
चिह्न	x				2				0				3			

दुगुन

धाधिं धिंधा धाधिं धिंधा | धातिं तिंता ताधिं धिंधा |
× 2

धाधिं धिंधा धाधिं धिंधा | धातिं तिंता तांधि धिंधा | धा
0 3 ×

© NCERT not to be republished

तिगुन

धाधिंधिं	धाधाधिं	धिंधाधा	तिंतिंता	ताधिंधा	धाधिंधा	तिंताता	धिंधिंधा		
×				2					
धातिंतिं	ताताधिं	धिंधाधा	धिंधिंधा	धाधिंधिं	धाधातिं	तिंताता	धिंधिंधा	धा	
0				3				×	

चौगुन

धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा	
×				
धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा	
2				
धाधिंधिंधा	ताधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा	
0				
धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंता	ताधिंधिंधा	धा
3				×

एकताल

एकताल तबले का अत्यंत लोकप्रिय और प्रचलित ताल है। यह चतस्त्र जाति का सम पदीताल है। इसका प्रयोग विलंबित, मध्य एवं द्रुत लय के खयाल एवं गत की संगति के लिए किया जाता है। तबले का एकल वादन भी इसमें होता है। इसके विभाग 2/2/2/2/2/2 मात्राओं के होते हैं। इसमें 12 मात्रा, छह विभाग, चार ताली और दो खाली होती हैं। इसकी तालियाँ क्रमश: पहली, पाँचवीं, नौवीं तथा ग्यारहवीं मात्राओं पर होती हैं। खाली तीन तथा सातवीं मात्रा पर है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिन	ना
चिह्न	×		0		2		0		3		4	

दुगुन

धिं धिं	धागे तिरकिट	तू ना	क त्ता	धागे तिरकिट	धिन ना	
×		0		2		
धिं धिं	धागे तिरकिट	तू ना	क त्ता	धागे तिरकिट	धिन ना	धिं
0		3		4		×

© NCERT not to be republished

तिगुन

धिं धिं धागे तिरकिट तू ना	क त्ता धागे तिरकिट धिन ना		
×	0		
धिं धिं धागे तिरकिट तू ना	क त्ता धागे तिरकिट धिन ना		
2	0		
धिं धिं धागे क त्ता धागे	तिरकिट धिन ना तिरकिट धिन	धा	
3	4	×	

चौगुन

धिं धिं धागे तिरकिट तू ना क त्ता	धागे तिरकिट धिन ना धिं धिं धागे तिरकिट	
×	0	
तू ना क त्ता धागे तिर धिन ना	धिं धिं धागे तिरकिट तू ना क त्ता	
2	0	
धागे तिरकिट धिन ना धिं धिं धागे तिरकिट	तू ना क त्ता धागे तिरकिट धिन ना	धिं
3	4	×

झपताल

झपताल एक अत्यंत लोकप्रिय और प्रचलित ताल है। यह खंड जाति का ताल है। इसका प्रयोग विलंबित और मध्य लय के खयाल एवं गतों की संगत के लिए किया जाता है। सादरा गायन शैली की संगति भी झपताल द्वारा ही होती है। तबले का एकल वादन भी इसमें होता है, इसके विभाग 2/3/2/3 के होने के कारण यह विषमपदी ताल है। इसमें 10 मात्राएँ, चार विभाग, तीन तालियाँ क्रमश: पहली, तीसरी, आठवीं मात्राओं पर होती हैं तथा एक खाली छठी मात्रा पर है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
बोल	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
चिह्न	×		2			0		3		

दुगुन

धी ना धी धी	ना ती ना धी धी ना	
×	2	
धी ना धी धी	ना ती ना धी धी ना	धी
0	3	×

© NCERT not to be republished

तिगुन

धी ना धी	धी ना ती	|	ना धी धी	ना धी ना	धी धी ना	|		
×			2					
ती ना धी	धी ना धी	|	ना धी धी	ना ती ना	धी धी ना	|	धी	
0			3				×	

चौगुन

धी ना धी धी	ना ती ना धी	|	धी ना धी ना	धी धी ना ती	ना धी धी ना	|		
×			2					
धी ना धी धी	ना ती ना धी	|	धी ना धी ना	धी धी ना ती	ना धी धी ना	|	धी	
0			3				×	

रूपक

रूपक ताल तबले का लोकप्रिय और प्रचलित ताल है। इसका प्रयोग शास्त्रीय, उपशास्त्रीय तथा सुगम संगीत में किया जाता है। मध्य लय और विलंबित लय का खयाल गायन भी इसमें प्रचलित है। गीत, भजन, ग़ज़ल एवं तंत्री तथा सुषिर वाद्यों की संगत के लिए भी इसका प्रयोग होता है। तबले का स्वतंत्र वादन भी इसमें प्रचलित है। यह विलंबित और मध्य लय का ताल है। द्रुत लय में इसका वादन उचित नहीं माना जाता है। पखावज का तीव्रा ताल और कर्नाटक संगीत का तिस्त्र जाति त्रिपुट ताल इसके सदृश हैं। इसमें विभाग 3/2/2 के होने के कारण यह मिश्र जाति का विषम पदीताल हुआ। यह एकमात्र ऐसा ताल है जिसके सम पर खाली है। इसीलिए इसे इस प्रकार लिखना उचित होगा—

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7
बोल	तीं	तीं	ना	धी	ना	धी	ना
चिह्न	⊗			1		2	

इसकी प्रथम मात्रा पर खाली और चौथी तथा छठी मात्रा पर ताली है।

दुगुन

तीं तीं	ना धी	ना धी	|	ना तीं	तीं ना	|	धी ना	धी ना	|	तीं
⊗				1			2			⊗

तिगुन

तीं तीं ना	धी ना धी	ना तीं तीं	|	ना धी ना	धी ना तीं	|	तीं ना धी	ना धी ना	|	तीं
⊗				1			2			⊗

चौगुन

तीं तीं ना धी ना धी ना तीं तीं ना धी ना |
⊗

धी ना तीं तीं ना धी ना धी | ना तीं तीं ना धी ना धी ना | तीं
1 2 ⊗

दादरा ताल

दादरा तबले का अत्यंत लोकप्रिय ताल है। उपशास्त्रीय, सुगम, लोक और फ़िल्मी संगीत में इसका खूब प्रयोग होता है। दादरा, कजरी, भजन और गज़ल तथा लोक गीतों के साथ यह मुख्य रूप से बजाया जाता है। तबले के साथ-साथ ढोलक, नाल, ताशा, नक्कारा, दुक्कड़ आदि जैसे वाद्यों पर भी यह ताल खूब बजता है। मूलत: चंचल और शृंगारिक प्रकृति का ताल होने के कारण यह प्राय: मध्य और द्रुत लय में ही बजता है, किंतु दादरा की संगति के समय इसकी लय धीमी हो जाती है। इसमें बजने वाली लग्गी लड़ी आकर्षक होती है। दादरा ताल में छह मात्राएँ हैं, जो 3/3 मात्राओं के विभाग में बंटी हैं। पहली मात्रा पर ताली और चौथी मात्रा पर खाली है। यह सम पदीताल है। इस ताल की जाति तिस्त्र है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	
बोल	धा	धी	ना	धा	ती	ना	धा
चिह्न	×			0			×

दुगुन

धा धी ना धा ती ना | धा धी ना धा ती ना | धा
× 0 ×

तिगुन

धा धी ना धा ती ना धा धी ना | धा ती ना धा धी ना धा ती ना | धा
× 0 ×

चौगुन

धा धी ना धा ती ना धा धी ना धा ती ना |
×

धा धी ना धा ती ना धा धी ना धा ती ना | धा
0 ×

© NCERT not to be republished

कहरवा ताल

उत्तर भारत में कहार नामक एक जाति है, जो पहले पानी का व्यवसाय करती थी। इनके द्वारा प्रस्तुत समूह लोक नृत्य को कहरवा नाच कहा जाता है। अत: कहरवा ताल के उद्‌गम का मूल स्रोत वही है। यह मूलत: लोक संगीत का ताल है जो सुगम संगीत और फ़िल्म संगीत में भी खूब लोकप्रिय हुआ है। तबले के साथ-साथ ढोलक, ताशा, नक्कारा, नगाड़ा एवं नाल आदि पर भी इसका खूब वादन होता है। अनेक गीत, गज़ल एवं भजन आदि इस ताल में निबद्ध हैं। यह मूलत: चंचल प्रकृति का और संगति का ताल है। इसमें तबले का स्वतंत्र वादन नहीं होता है। इसकी खूबसूरत किस्में और लग्गी-लड़ी श्रवणीय होती हैं। यह आठ मात्राओं का समपद ताल है, जिसके 4/4 मात्राओं के दो विभाग हैं। एक मात्रा पर ताली और पाँचवीं मात्रा पर खाली है। यह चतस्त्र जाति का ताल है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	
बोल	धा	गे	न	ति	न	क	धि	न	धा
चिह्न	×				0				×

दुगुन

धागे नति नक धिन | धागे नति नक धिन | धा
× 0 ×

तिगुन

धागेन तिनक धिनधा गेनति | नकधि नधागे नतिन कधिन | धा
× 0 ×

चौगुन

धागेनति नकधिन धागेनति नकधिन |
×

धागेनति नकधिन धागेनति नकधिन | धा
0 ×

पखावज

चारताल अथवा चौताल

चारताल अथवा चौताल पखावज का अत्यंत लोकप्रिय और प्राचीन ताल है। ध्रुपद गायन, ध्रुपद अंग के वादन तथा पखावज पर मुक्त वादन के लिए इस ताल का मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है। वर्तमान काल में तबले पर भी इस ताल को बजाने की प्रथा शुरू हो गई है, वादन विद्यार्थी तबले

© NCERT not to be republished

पर भी इसे बजाते हैं। यह खुले और ज़ोरदार शैली का समपदी ताल है। इस ताल में कुल 12 मात्राएँ और छह विभाग हैं। चार तालियाँ क्रमश: पहली, पाँचवीं, नौवीं और ग्यारहवीं मात्राओं पर हैं तथा दो खाली तीसरी और सातवीं मात्राओं पर हैं। इसकी जाति चतस्त्र है।

मात्रा	1 2	3 4	5 6	7 8	9 10	11 12	
बोल	धा धा	दिं ता	किट धा	दिं ता	तिट कत	गदि गन	धा
चिह्न	×	0	2	0	3	4	×

दुगुन

धा धा दिं ता | किट धा दिं ता | तिट कत गदि गन |
× 0 2

धा धा दिं ता | किट धा दिं ता | तिट कत गदि गन | धा
0 3 4 ×

तिगुन

धा धा दिं ता किट धा | दिं ता तिट कत गदि गन |
× 0

धा धा दिं ता किट धा | दिं ता तिट कत गदि गन |
2 0

धा धा दिं ता किट धा | दिं ता तिट कत गदि गन | धा
3 4 ×

चौगुन

धा धा दिं ता किट धा दिं ता | तिट कत गदि गन धा धा दिं ता |
× 0

किट धा दिं ता तिट कत गदि गन | धा धा दिं ता किट धा दिं ता |
2 0

तिट कत गदि गन धा धा दिं ता | किट धा दिं ता तिट कत गदि गन | धा
3 4 ×

सूलताल

यह पखावज का लोकप्रिय और प्रचलित ताल है। इसका वादन मध्य और द्रुत लय में होता है। ध्रुपद अंग के गायन और वादन के साथ इसका वादन होता है। पखावज पर स्वतंत्र वादन के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसके बोल खुले और ज़ोरदार होते हैं। यह चतस्त्र जाति का सम पदीताल है। इस ताल में 10 मात्राएँ और पाँच विभाग होते हैं। तीन तालियाँ क्रमश: पहली, पाँचवीं और सातवीं मात्राओं पर होती हैं। तीसरी और नौवीं मात्राओं पर दो खाली भी हैं।

© NCERT not to be republished

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	
बोल	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन	धा
चिह्न	×		0		2		3		4		×

दुगुन

धा धा | दिं ता | किट धा | तिट कत | गदि गन | धा
× | 0 | 2 | 3 | 4 | ×

तिगुन

धा धा दिं ता किट धा | तिट कत गदि गन धा धा | दिं ता किट धा तिट कत
× | 0 | 2

गदि गन धा धा दिं ता | किट धा तिट कत गदि गन | धा
3 | 4 | ×

चौगुन

धा धा दिं ता किट धा तिट कत | गदि गन धा धा दिं ता किट धा |
× | 0

तिट कत गदि गन धा धा दिं ता | किट धा तिट कत गदि गन धा धा
2 | 3

दिं ता किट धा तिट कत गदि गन | धा
4 | ×

इस ताल का एक और ठेका भी प्रचलित है—

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	
बोल	धा	घिड़	नग	दीं	घिड़	नग	गद्	दी	घिड़	नग	धा
चिह्न	×		0		2		3		0		×

तीव्रा या तेवरा

यह पखावज का प्राचीन, महत्वपूर्ण और प्रचलित ताल है जो तबला वादकों में भी लोकप्रिय है। तेज़ गति में बजने के कारण ही इसका नाम तीव्रा पड़ा। ध्रुपद अंग के गायन और वादन की संगति के साथ-साथ एकल वादन के लिए भी इस ताल का चयन किया जाता है। इसके विभाग 3/2/2 मात्राओं के हैं। अत: यह मिश्र जाति का विषम पदीताल है। यह खुले और ज़ोरदार वर्णों से निर्मित ताल है। इसमें सात मात्राएँ, तीन विभाग और तीन तालियाँ क्रमश: पहली, चौथी और छठी मात्राओं पर हैं। इस ताल में खाली नहीं है।

© NCERT not to be republished

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	
बोल	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन	धा
चिह्न	×			2		3		×

दुगुन

धा दिं ता तिट कत गदि | गन धा दिं ता | तिट कत गदि गन | धा
×　　　　　　　　　　2　　　　　　3　　　　　　×

तिगुन

धा दिं ता तिट कत गदि गन धा दिं |
×

ता तिट कत गदि गन धा | दिं ता तिट कत गदि गन | धा
2　　　　　　　　　　3　　　　　　　　　×

चौगुन

धा दिं ता तिट कत गति गन धा दिं ता तिट कत |
×

गदि गन धा दिं ता तिट कत गदि |
2

गन धा दिं ता तिट कत गदि गन | धा
3　　　　　　　　　　×

धमार ताल

पखावज का यह अत्यंत लोकप्रिय और प्रचलित ताल तबला वादकों और कथक नर्तकों में बहुत लोकप्रिय है। 14 मात्रा में निबद्ध होरी गायन की संगति धमार ताल द्वारा ही की जाती है। इसलिए उस गायन शैली को भी धमार कहा जाता है। विषम पदी यह ताल बोलों की दृष्टि से मिश्र जाति का है जबकि ताल विभाग की दृष्टि से संकीर्ण जाति का है। इस पर स्वतंत्र वादन भी खूब होता है। वीणा, सुरबहार, सरोद, सितार और संतूर आदि पर भी धमार अंग की गतें बजती हैं। यह एकमात्र ताल है जिसका सम बायें पर बजता है। इसमें 14 मात्राएँ, चार विभाग, तीन ताली और एक खाली होती है। पहली, छठी और ग्यारहवीं मात्राओं पर ताली तथा आठवीं मात्रा पर खाली है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	
बोल	क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ	क
चिह्न	×					2		0			3				×

© NCERT not to be republished

दुगुन

कधि टधि टधा ऽग तिट | तिट ताऽ |
×　　　　　　　　　　2

कधि टधि टधा | ऽग तिटतिट ताऽ | क
0　　　　　　3　　　　　　　×

तिगुन

कधिट धिटधा ऽगति टतिट ताऽक | धिटधि टधाऽ |
×　　　　　　　　　　　　　2

गतिट तिटता ऽकधि | टधिट धाऽग तिटति टताऽ | क
0　　　　　　　3　　　　　　　　　　×

चौगुन

कधिटधि टधाऽग तिटतिट ताऽकधि टधिटधा |
×

ऽगतिट तिटताऽ | कधिटधि टधाऽग तिटतिट |
2　　　　　　0

ताऽकधि टधिटधा ऽगतिट तिटताऽ | क
3　　　　　　　　　　　　　×

© NCERT not to be republished

अभ्यास

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. झपताल में पाँचवीं मात्रा पर कौन-सा बोल है?
   (क) ती　(ख) ना　(ग) धी　(घ) धीना
2. एकताल में कितने विभाग होते हैं?
   (क) 12　(ख) छह　(ग) तीन　(घ) दो
3. दादरा में कितनी मात्राएँ हैं?
   (क) दो　(ख) तीन　(ग) चार　(घ) छह
4. कहरवा ताल में कितने ताल के चिह्न होते हैं?
   (क) पाँच　(ख) एक　(ग) तीन　(घ) दो

5. रूपक ताल का सम कहाँ दिखाया जाता है?

(क) पहली मात्रा (ख) चौथी मात्रा

(ग) तीसरी मात्रा (घ) छठी मात्रा

6. दादरा ताल में कितने विभाग होते हैं?

(क) तीन (ख) दो (ग) चार (घ) एक

7. तीनताल कितनी मात्राओं का होता है?

(क) 12 (ख) आठ (ग) 16 (घ) 18

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. ताल का नाम --- ।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
क	....	....	धि	ट	धा	....	ग	....	....	ति	ट	....	....
×					....					3			

2. ताल का नाम --- ।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	....	....	धा	....	....	....	....	....	तिं	ता	ता	....	....	धा
1				2				....				3			

3. ताल का नाम --- ।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धिं	....	धागे	....	तू	ना	....	....	....	तिरकिट	....	ना
×		....		....		0		....		4	

4. ताल का नाम --- ।

1	2	....	....	....	6	7	....	....	....
धी	ना	धी	धी	....	ती	....	धी	....	ना
....		2			....		3		

5. ताल का नाम --- ।

....	....	....	4	5	6	7
तीं	तीं	ना	....	....	धी	....
....			....		2	

6. ताल का नाम --- ।

1	2	3	....	5	6
धा	....	ना	धा	ती	....
×			....		

© NCERT not to be republished

7. ताल का नाम ....।

1	2	3	4	5	6	7	8
धा	....	ना	....	ना	....	धि	....
×				0			

8. ताल का नाम ....।

1	2	....	....	5	6	....	....	9	10
धा	धा	दिं	....	....	धा	तिट	....	....	गन
×		....		2		....		4	

9. ताल का नाम ....।

1	2	3	....	....	6	7	8	....	....	11	12
धा	धा	....	....	किट	....	....	ता	तिट	....	....	गन
×		0		2		....		....		4	

10. ताल का नाम..।

1	2	....	....	....	6	7	8	....	....	....	....	13	14
क	धि	ट	....	....	धा	....	....	....	ट	ति	ट	ता	....
×					....		0			3			

11. ताल का नाम ....।

1	2	3	....	....	....	....	7
धा	....	ता	....	कत	गदि	....	....
×			2		....		

सुमेलित कीजिए

(क) *क्रमिक पुस्तक मालिका*	1. धमार
(ख) गांधर्व महाविद्यालय	2. 1901
(ग) धागे तिरकिट बोल	3. 9, 10, 11, 12
(घ) चारताल में तिटकत गदिगन	4. विष्णु नारायण भातखंडे
(ङ) सूलताल की जाति	5. एकताल
(च) छोटी गायन की ताल	6. चतस्त्र जाति

© NCERT not to be republished

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. *नाट्यशास्त्र* में ताल को किस तरह प्रदर्शित किया गया है?
2. *नाट्यशास्त्र* में प्रयोग किए गए तालों के चिह्नों को बताइए।
3. लाहौर में सन् 1901 में किसने और कौन-से संगीत महाविद्यालय की स्थापना की थी?
4. पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के दो महान शिष्यों के नाम बताइए।
5. उस्ताद अहमद जान थिरकवा किस वाद्य यंत्र के महारथी थे?

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. तीनताल का तिगुन लिखिए।
2. धमार ताल के बोल लिखकर उसका दुगुन लिखिए।
3. ध्रुपद में किन-किन तालों का प्रयोग होता है? उन तालों का तिगुन और चौगुन लिखिए।
4. हिंदुस्तानी ताल पद्धति में किस ताल में सिर्फ़ आठ मात्राएँ हैं? उस ताल को विस्तृत रूप में लिखिए।
5. पखावज पर बजने वाला सूलताल कितनी मात्राओं का होता है? एक गुन लिखकर बताइए।
6. बिलम्वित खयाल गाने के लिए किन-किन तालों का प्रयोग किया जाता है। उन तालों को ताल पद्धति के अनुसार लिखकर बताइए।
7. विष्णु नारायण भातखंडे द्वारा बनाई गई ताल पद्धति के चिह्नों का वर्णन कीजिए।

विद्यार्थियों हेतु गतिविधि

1. कोई भी लोकगीत जो बच्चों को पसंद हो, उसे ताल पद्धति में लिखिए।
2. सभी बच्चों को फ़िल्मी गीत पसंद होते हैं, एक फ़िल्मी गीत जो त्रिताल में गाया गया है, उसकी चार पंक्तियों को ताल पद्धति में लिखिए।
3. आपके राज्य में प्रचलित किन्हीं पाँच लोकगीतों को लिखिए। उस पर विचार करते हुए बताइए कि उसमें किन-किन तालों का प्रयोग किया गया है।
4. कक्षा में पढ़ते संगीत गायन के सहपाठियों से बंदिशों में मौसम के विवरण पर बातचीत कीजिए, उनका चयन कीजिए एवं बताइए कि किस तरह शब्दों को स्वरलिपि एवं ताल पद्धति में सुनिश्चित किया गया है? इस पर विचार-विमर्श कीजिए।
5. धमार ताल में किसी भी एक बंदिश को अपने सहपाठियों की सहायता से लिखिए। इस ताल में रची गई उस बंदिश की दुगुन, तिगुन व चौगुन भी लिखिए।
6. क्या आप लयकारी में गणित देख पाते हैं? इस पर एक परियोजना बनाइए।

© NCERT not to be republished

अनोखे लाल मिश्र

बनारस घराने के महान तबला वादक पंडित अनोखे लाल मिश्र का जन्म सन् 1914 में बनारस में हुआ था। बचपन में ही माता-पिता को खो चुके पंडित अनोखे लाल मिश्र ने, तबला वादन की शिक्षा पंडित भैरव प्रसाद मिश्र से प्राप्त की थी। अपनी अप्रतिम तैयारी और वादन के नाद सौंदर्य के कारण पंडित अनोखे लाल विशेष रूप से विख्यात थे। गायन, वादन और नृत्य— तीनों की संगति करने में दक्ष अनोखे लाल का स्वतंत्र तबला वादन भी अत्यंत श्रवर्णीय होता था। 'नाधिंधिंना' के जादूगर नाम से विख्यात अनोखे लाल मिश्र 'तिरकिट, धिरधिर किटितक' आदि बोलों का भी चमत्कारिक वादन करते थे। अपने समय के सभी महान् संगीतकारों की संगति कर चुके पंडित अनोखे लाल मिश्र की ख्याति आज भी एक आदर्श तबला वादक के रूप में है। गैंगरिन होने के कारण अनोखे लाल का निधन मात्र 44 वर्ष की उम्र में 10 मार्च, 1958 में हो गया था।

इनके पुत्र पंडित राम मिश्र भी सुयोग्य ताबलिक थे। इनके शिष्यों में पंडित ईश्वर लाल मिश्र, पंडित महापुरुष मिश्र और पंडित छोटे लाल मिश्र भी श्रेष्ठ तबला वादक हुए।

पर्वत सिंह

पर्वत सिंह का जन्म ग्वालियर, मध्य प्रदेश में 1879 के आस-पास हुआ। इनके पिता सुखदेव सिंह और प्रपितामह जोरावर सिंह अपने समय के ख्याति प्राप्त कलाकार एवं ग्वालियर दरबार के रत्नों में से एक थे। पिता सुखदेव सिंह, अपने पुत्र पर्वत सिंह को सांगीतिक भ्रमण में सदा साथ रखते थे। इससे उन्हें बाल्यकाल से ही श्रेष्ठ कलाकारों के संपर्क में आने का अवसर मिला और दिन-प्रतिदिन उनका अनुभव बढ़ता गया। फलत: किशोरावस्था तक पर्वत सिंह एक सिद्ध-हस्त कलाकार बन गए।

पर्वत सिंह ने अपने यौवन के 15 वर्ष महानगरी बम्बई में व्यतीत किए। वहाँ उन्हें चोटी के अनेक कलाकारों के साथ संगत करने का अवसर मिला। परंतु पिता के निधन के पश्चात् ग्वालियर के दरबार में उनकी नियुक्ति हो गई। उनकी कला से प्रभावित होकर भारत धर्म मंडल के अध्यक्ष दरभंगा नरेश ने 1926 में उन्हें विद्याकला विशारद की उपाधि से सम्मानित किया। इन्हें लय-ताल का स्तम्भ माना जाता था।

पर्वत सिंह के बड़े पुत्र माधव सिंह भी पखावज वादक थे और उन्हें भी ग्वालियर दरबार का आश्रय प्राप्त था। इनके छोटे पुत्र गोपाल सिंह (दिल्ली) पखावज वादन से अधिक गिटार वादन के लिए प्रसिद्ध हैं। इनका देहांत 18 जुलाई, 1951 को ग्वालियर में हुआ।

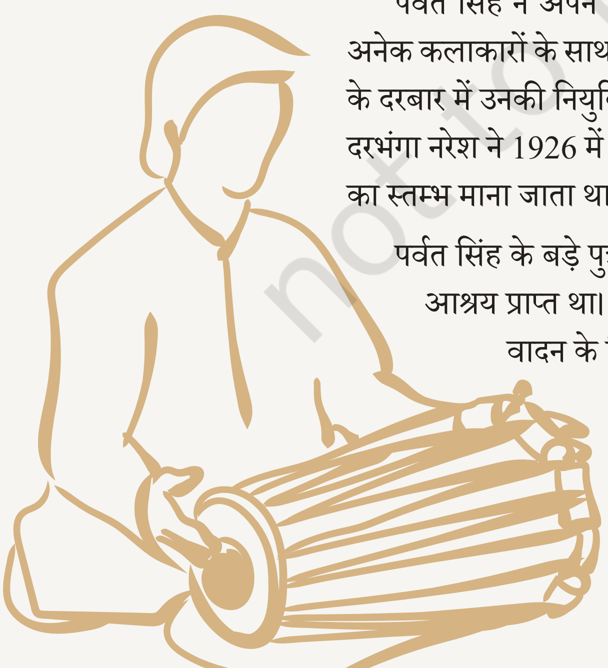

© NCERT not to be republished

6 पारिभाषिक शब्द

ध्वनि

संगीत एक ऐसी कला या विद्या है जिसका माध्यम ध्वनि है। ध्वनि के अनेक प्रकारों पर जब हम गहन दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि ये विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ कभी हमें चौंकाती हैं, कभी हमारे अंदर दिलचस्पी जगाती हैं तो कभी अनूठी लगती हैं। कभी मेघ गर्जन की तरह तेज़ तो कभी नर्म, मुलायम, मखमली घास पर किसी की पदचाप तो कभी पक्षियों के कलरव और पशुओं के रँभाने की आवाज़, कभी फ़ेरी वालों की हाँक लगाती आवाज़ें तो कभी अनेक मानवीय ध्वनियाँ हमें सुनाई पड़ती रहती हैं। नदी की धाराओं की कलकल ध्वनि, पत्तियों की सरसराहट, आकाश से गिरती वर्षा की बूँदों की रिमझिम और ऐसी ही अनेक ध्वनियाँ प्रकृति में समाहित हैं। एक संवेदनशील व्यक्ति इन सभी का अनुभव करता है।

घर्षण अथवा आघात से उत्पन्न ध्वनि एक प्रकार का कंपन या आंदोलन है जो किसी ठोस, द्रव या वायु रूपी पदार्थ से होकर संचरित होता है। इसे वैज्ञानिकों द्वारा भी सिद्ध किया जा चुका है। ध्वनि अनेक प्रकार से उत्पन्न हो सकती है, किंतु मुख्य रूप से उन कंपनों को ही ध्वनि कहते हैं जो मानव के कान में सुनाई पड़ती है। ध्वनि के संचरण के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है। मनुष्य के कानों द्वारा लगभग 20 हर्ट्स से लेकर 20 किलोहर्ट्स (20000 हर्ट्स) आवृत्ति की तरंगों को सुना जा सकता है। बहुत-से जीव-जंतु इससे बहुत अधिक या बहुत कम आवृत्ति की तरंगों को भी सुन सकते हैं। पेड़-पौधों में भी ध्वनि को सुनने की क्षमता होती है।

उदाहरणस्वरूप, यदि हम किसी तंत्री वाद्य के तार को छेड़ें या किसी तबले जैसे वाद्य या किसी ऐसी वस्तु पर आघात करें जिनमें कंपन संभव हो, तो उसमें ध्वनि अवश्य उत्पन्न होगी। अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक ध्वनि की विशेषता उसके कंपन पदार्थ व कंपन की संख्या पर निर्भर करती है। बाँसुरी में हवा के कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है। झाँझ में धातु के कंपन से तथा मनुष्य के कंठ के भीतर जो स्वर तंत्रियाँ हैं, उसके कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है। ध्वनि दो प्रकार की होती है— मधुर और कटु अथवा कोलाहल। मधुर ध्वनि संगीतोपयोगी होती है।

नाद

संगीत का आधार नाद है। नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर तथा स्वर से ही राग की उत्पत्ति होती है। नियमित और स्थिर आंदोलन संख्या वाली ध्वनि को नाद की संज्ञा प्रदान की गई है।

11153CH06

© NCERT not to be republished

नाद के दो भेद हैं —

1. **आहत नाद** — जब आघात अथवा घर्षण करने के बाद कोई ध्वनि उत्पन्न होती है तो उसे आहत नाद कहते हैं। संगीत में यही नाद प्रयोग में लाया जाता है।
2. **अनाहत नाद** — ऐसी ध्वनि जो बिना किसी प्रकार के आघात किए उत्पन्न हो, उसे अनाहत नाद कहते हैं। इसे सुना नहीं जा सकता, यह सिर्फ़ अनुभव की जा सकती है। यह प्रकृति में पहले से ही विद्यमान है। अगर दोनों कानों में अँगुली डालकर, कान बंद करके तन्मयता से सुनें तो कुछ अस्पष्ट आवाज़ें सुनाई देती हैं। इसी को अनाहत नाद कहते हैं।

नाद की विशेषताएँ अथवा लक्षण

1. **नाद की तारता (नीचा-ऊँचापन)** — प्रत्येक नाद एक-दूसरे से ऊँचा या नीचा होता है। गाने-बजाने के समय हम यह अनुभव करते हैं कि 'सा' से ऊँचा 'रे', 'रे' से ऊँचा 'ग' है। जैसे-जैसे हम ऊपर चढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे स्वर ऊँचा होता जाता है और जैसे-जैसे नीचे उतरते जाते हैं तो स्वर नीचा होता जाता है। यही नाद की तारता (नीचा-ऊँचापन) कहलाती है।
2. **नाद का छोटा-बड़ापन या तीव्रता** — एक ही नाद को हम धीरे या ज़ोर से उत्पन्न कर सकते हैं, जो नाद धीरे से उत्पन्न किया गया हो उसे नाद का छोटापन कहते हैं। यह नाद या ध्वनि कम दूर तक सुनाई देती है। ज़ोर से उत्पन्न की गई ध्वनि को नाद का बड़ापन कहते हैं। यह नाद या ध्वनि अधिक दूर तक सुनाई देती है।
3 **नाद की जाति अथवा गुण** — नाद की जाति के आधार पर वाद्य या व्यक्ति को बिना देखे उसकी आवाज़ सुनकर हम यह आसानी से पहचान जाते हैं कि सितार की आवाज़ आ रही है या किसी इनसान के बोलने की। इसे ही नाद की जाति अथवा गुण कहते हैं।

श्रुति

संगीत में उपयोग होने वाली ध्वनि जो कानों को स्पष्ट अथवा साफ़ सुनाई दे और एक-दूसरे से अलग व स्पष्ट रूप से पहचानी जा सके, उसे 'श्रुति' कहते हैं। "श्रूयते इति श्रुति" अर्थात् जिसे सुना जा सके, श्रुति कहलाती है।

स्वर

ऐसी मान्यता है कि नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा और मुख— इन पाँच स्थानों से पाँच प्रकार के नाद उत्पन्न होते हैं। नाद ही क्रमश: स्वरों का जन्मदाता है एवं स्वर भाव तथा रस की सृष्टि करता है।

© NCERT not to be republished

भारतीय संगीत में मुख्यत: सात स्वर माने गए हैं जो क्रमश: इस प्रकार हैं— षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद। इन सात स्वरों को सामान्य बोलचाल में "सा रे ग म प ध नि" कहते हैं। ये सातों शुद्ध स्वर हैं। लेकिन इनमें— रे, ग, ध, और नि कोमल स्वर होते हैं तथा म तीव्र स्वर होता है, इन्हें विकृत स्वर भी कहते हैं। इस तरह शुद्ध और विकृत स्वरों की कुल संख्या 12 हो जाती है। 'सा' और 'प' स्वर अचल होते हैं।

स्वर जब नीचे से ऊपर की ओर जाते हैं अर्थात् 'सा रे ग म प ध और नि' तो उसे आरोह कहते हैं। जबकि, ऊपर से नीचे की ओर आने वाली क्रिया अर्थात् 'सा नि ध प म ग रे सा' अवरोह कहलाती है।

जैन आचार्य पार्श्वदेव ने अपने ग्रंथ *संगीत समयसार* में लिखा है कि सिर, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दाँत— इन छह स्थानों से उत्पन्न स्वर षड्ज कहलाता है। नाभि से उठकर कंठ तथा सिर से समाहित वायु जब वृषभ के समान नाद उत्पन्न करता है, तब ऋषभ कहलाता है। नाभि से उत्पन्न तथा कंठ एवं सिर से संबंद्ध वह स्वर जो गंधर्वों के सुख का कारण बना, गंधार कहलाया। नाभि से उठा हुआ और हृदय से समाहित वायु मध्य स्थान में उत्पन्न होने के कारण मध्यम कहलाया। होंठ, तालु, कंठ, सिर और हृदय— इन पाँच स्थानों से उत्पन्न स्वर को पंचम कहा गया। वायु होंठ, कंठ, तालु, सिर और हृदय से होकर जब गुज़रती है तो उसे धैवत नाम से संबोधित किया जाता है। इसी प्रकार वायु के द्वारा कंठ, तालु और सिर का समर्थन न होने पर जिस स्वर से सभी स्वरों की समाप्ति होती है, वह स्वर निषाद है।

(*मनके— भाव, सुर, लय के*, प्रथम संस्करण, पं. विजयशंकर मिश्र, पृष्ठ 43–44, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार)

सप्तक

सात स्वरों के एक समूह को सप्तक कहते हैं। सप्तक के तीन प्रकार माने गए हैं— मंद्र सप्तक, मध्य सप्तक और तार सप्तक। सामान्य बोलचाल के लिए जिस ध्वनि का प्रयोग किया जाता है, यदि उसे मध्य सप्तक माना जाए तो उससे दुगुनी नीची ध्वनि को मंद्र सप्तक व दुगुनी ऊँची ध्वनि को तार सप्तक की संज्ञा दी जा सकती है। इसी प्रकार गाने-बजाने के मध्य 'सा' से 'नि' तक जिस ध्वनि का प्रयोग किया जाता है, उसे मध्य सप्तक कहा जाता है। उससे दुगुनी नीचे पिच वाले स्वरों को मंद्र सप्तक व दुगुनी ऊँची तारता वाले स्वरों को तार सप्तक कहा जाता है।

एक मान्यता के अनुसार, मयूर से षड्ज, चातक से ऋषभ, बकरे से गंधार, कौवे से मध्यम, कोयल से पंचम, मेंढक से धैवत और हाथी की आवाज़ से निषाद स्वरों की उत्पत्ति हुई है।

© NCERT not to be republished

राग

विशिष्ट स्वरों से बनने वाले समुदाय राग कहलाते हैं।

> **“योऽसौ ध्वनि विषेशस्तु स्वरवर्ण विभूषीत:।**
> **रंजको जनचित्तानां स राग: कथितौ बुधै:।।”**
>
> — *बृहृद्दसी तृतीयोअध्याय: श्लोक 264*

भावार्थ— ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जो ‘स्वर’ तथा ‘वर्ण’ से सुशोभित हो और जो सुनने वाले के मन को प्रसन्न कर सके, उसे राग कहते हैं। यहाँ पर ‘स्वर’ एवं ‘वर्ण’ शब्दों का उल्लेख आया है। स्वर से तात्पर्य संगीतोपयोगी ध्वनि से है जो अपने आप में मधुर हो, निरंतर एवं स्वयं चित्त को प्रसन्न करने वाली हो।

लय एवं उसके प्रकार

देखा जाए तो प्रत्येक स्थान पर व्यक्ति, वस्तु, जीव-जंतु सभी में एक लय होती है। यहाँ तक कि सूर्य, चंद्रमा इत्यादि भी समान लय में ही चलते हैं। मनुष्य की नाड़ी की गति भी समान लय में चलती रहती है। गायन, वादन एवं नर्तन में व्यतीत हो रहे समय की समान गति को लय कहा जाता है। एक मात्रा से दूसरी मात्रा के समान अंतर को भी लय कहते हैं। लय अपने व्यापक अर्थ में संपूर्ण जगत में व्याप्त है। पृथ्वी अपनी धुरी पर एक निश्चित लय में घूमती है, मनुष्य की नाड़ी एक निश्चित लय में चलती है तथा उसका हृदय एक निश्चित लय में धड़कता है। इसमें जब भी व्यवधान आता है तो संतुलन बिगड़ जाता है। लय के सही प्रयोगों के कारण ही ताल अपना आवर्तन निर्दिष्ट समय में पूरा करता है। दिन-रात और सूर्योदय-सूर्यास्त भी निश्चित समय पर होते हैं। घड़ी की सुई की चाल, स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी और उसके हृदय की धड़कन आदि लय के जीवंत उदाहरण हैं।

शास्त्रों में लय के तीन प्रकार बताए गए हैं — विलंबित, मध्य और द्रुत।

1. **विलंबित लय**— जब लय बहुत धीमी गति में चलती है तो उसे विलंबित लय कहा जाता है। इस लय में गाए जाने वाले खयाल की बंदिश को विलंबित खयाल कहते हैं। सितार पर बजने वाली गत को मसीतखानी या विलंबित गत कहते हैं। तबला, पखावज या अन्य वाद्यों में भी विलंबित लय का प्रयोग किया जाता है। जब एक मात्रा से दूसरी मात्रा पर जाने में विलंब होता है, तो उसे विलंबित लय कहते हैं। विलंबित अर्थात् विलंब से आने वाला। इसकी गति मध्य लय की तुलना में आधी होती है। खयाल गायन में बड़ा

© NCERT not to be republished

अर्थात् विलंबित खयाल, ध्रुपद, तंत्री और सुषिर वाद्यों की विलंबित और मसीतखानी गतें और नृत्य तथा एकल तबला वादन का आरंभ इसी लय में होता है। सामान्यत: झूमरा, तिलवाड़ा, एकताल, आड़ा चौताल, धमार, रूपक और झपताल जैसी तालें इसके लिए अधिक उपयुक्त मानी गई हैं। इसका एक अन्य प्रकार अति विलंबित लय भी मिलता है।

2. **मध्य लय**— वह लय जो सामान्यत: न तो बहुत अधिक विलंबित हो और न बहुत अधिक तेज़ हो, मध्य अर्थात् बीच की लय कहलाती है। गाने-बजाने में अधिकतर मध्य लय का प्रयोग किया जाता है। इसका मात्रा काल लगभग एक सेकंड का होता है। धमार गायन, छोटा खयाल, सितार की गतें और तबले में रेला आदि का वादन प्राय: इसी लय में होता है। त्रिताल, एकताल, झपताल, रूपक, आड़ा चौताल, तीव्रा इत्यादि ताल इसी लय में बजाए जाते हैं। शांत रस और शृंगार रस के लिए इस लय को उपयोगी माना गया है।

3. **द्रुत लय**— गाते-बजाते समय एक लय स्थिर की जाती है जो बराबर की लय कहलाती है। मध्य लय से दुगुनी लय को द्रुत लय कहा जाता है। इसी लय में द्रुत खयाल, तराने तथा सितार आदि पर रजाखानी या द्रुत गतें बजाई जाती हैं। स्वर वाद्यों में यहीं से झाला की शुरुआत करते हैं, जिसे अतिद्रुत लय तक ले जाकर वादक अपनी कुशलता का प्रदर्शन करते हैं। तबला स्वतंत्र वादन में, इस लय में टुकड़े, परन, गत, फ़र्द आदि का वादन होता है। इसमें एक मात्रा से दूसरी मात्रा के बीच का अंतराल लगभग ½ सेकंड का होता है। त्रिताल, एकताल, झपताल, सूलताल, रूपक, तीव्रा, दीपचंदी, कहरवा, दादरा आदि जैसी तालें इस लय के लिए उपयोगी हैं। रौद्र, वीभत्स, भयानक, वीर एवं अद्भुत रसों का प्रदर्शन इसी लय में होता है।

ताल

ताल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'तल्' धातु से हुई है जिसे आधार और भित्ति भी कहा जाता है। इसलिए ताल की गणना संगीत के आधारभूत तत्वों में होती है। जिस प्रकार अनुशासन और सामाजिक नियमों, प्रतिबंधों का हमारे दैनिक जीवन में बहुत महत्व होता है, उसी तरह ताल का संगीत में महत्व होता है। ताल ही संगीत को अनियंत्रित होने से रोककर एक निश्चित समय सीमा में बाँधता है। यह संगीत में व्यतीत हो रहे समय को मापने का एक महत्वपूर्ण साधन है जो भिन्न-भिन्न मात्राओं, विभागों, ताली व खाली के योग से बनता है। ताल के अंदर लय रक्त की तरह, मात्रा नाड़ी की तरह और ताली-खाली विभिन्न अंगों की तरह होती हैं। ताल के माध्यम से ही गायन, वादन और नर्तन की विभिन्न विधाओं की संगति की जाती है। समस्त सांगीतिक रचनाएँ किसी न किसी ताल में निबद्ध होती हैं। पारिभाषिक रूप से विभिन्न मात्राओं के समूह को ताल कहते हैं। संगीत में समय का माप ताल द्वारा किया जाता है। कह सकते हैं कि संगीत में समय आधारित एक निश्चित ढाँचे को ताल कहा जाता है। हिंदुस्तानी संगीत पद्धति में अनेक तालों की

© NCERT not to be republished

रचना की गई है। भारतीय संगीत में प्रचलित विभिन्न गायन शैलियों के लिए अलग-अलग तालों का निर्माण हुआ है। उदाहरणस्वरूप, ध्रुपद के लिए चारताल, सूलताल, ब्रह्मताल आदि, धमार के लिए धमार ताल आदि, ठुमरी के लिए दीपचन्दी व जतताल इत्यादि ताल बनाए गए हैं।

उदाहरण के लिए एकताल, जिसमें 12 मात्राएँ, छह विभाग हैं, चार ताली और दो खाली हैं।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ताली	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धी	ना
चिह्न	×		0		2		0		3		4	

मात्रा

लय की गति के मापन की क्रिया को मात्रा कहते हैं। मात्रा और लय दोनों एक-दूसरे की पूरक होती हैं। एक मात्रा एक सेकंड की मानें और मात्रा की लंबाई बढ़ा दें यानि दो सेकंड की कर दें तो विलंबित लय बनेगी। यदि मात्रा की लम्बाई घटाकर आधे सेकंड की एक मात्रा कर दें तो द्रुत लय हो जाएगी। मात्रा की गति पर ही लय निर्भर करती है। जब दो मात्राओं के मध्य अंतराल अधिक होगा तो लय भी धीमी होगी और अंतराल कम होगा तो लय तेज़ होगी। संगीत में व्यतीत हो रहे समय को मापने का साधन ताल है और ताल की सबसे छोटी इकाई अथवा पैमाना 'मात्रा' है। मात्रा पर विचार करते समय लय को ध्यान में रखना ज़रूरी होता है। भिन्न-भिन्न लयों में मात्रा की अवधि भी भिन्न-भिन्न होती है।

भिन्न-भिन्न मात्राओं के योग से ही एकताल की रचना होती है। जैसे तीव्रा ताल सात मात्रा की है, इसमें तीन ताली हैं। इस ताल में खाली नहीं होती है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7
ताल	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
चिह्न	×			2		3	

विभाग

प्रत्येक ताल के कुछ खंड होते हैं, इन्हें विभाग कहा जाता है। किसी भी ताल की मात्रा और स्थान विशेष को पहचानने की सुविधा के लिए उसे अलग-अलग खंडों या विभागों में बाँटा जाता है। किसी भी ताल की कुल तालियों, खालियों के योग के बराबर उस ताल के विभागों की संख्या होती है अर्थात् हर विभाग एक नई ताली या खाली का सूचक होता है, जैसे— रूपक में एक खाली और दो ताली हैं तो रूपक में तीन विभाग हैं। चौताल (चारताल) में चार ताली और दो खाली हैं तो उसके विभागों की संख्या छह है। विभाग के चिह्न के रूप में खड़ी रेखा चिह्न का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए, चारताल (चौताल), (अगले पृष्ठ पर देखें)—

not to be republished © NCERT

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ताल	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
चिह्न	×		0		2		0		3		4	

ताली एवं खाली

जब किसी ताल को अलग-अलग विभागों में बाँट दिया जाता है तो उन विभागों की पहचान के लिए दो अलग-अलग क्रियाओं का सहारा लिया जाता है। इसमें सशब्द क्रिया को साधारण बोलचाल की भाषा में ताली या आघात कहते हैं। बोलों की पढ़ंत करते समय ताली को दोनों हथेलियों को जोड़कर एक ध्वनि उत्पन्न करके दिखाया जाता है। खाली अर्थात् रिक्त या शून्य का भाव प्रदर्शित करने के लिए हाथ को हिलाकर शून्य के भाव का बोध कराया जाता है।

सामान्यत: ताली वाले स्थानों पर संयुक्त वर्ण, जैसे— धा, धिं आदि का ही प्रयोग होता है। खाली सामान्यत: ताल के मध्य में होती है, जैसे— त्रिताल में नौवीं मात्रा पर, झपताल में छठी और कहरवा में पाँचवीं मात्रा पर। किसी भी ताल में जिस मात्रा पर खाली होती है, वहाँ प्राय: बंद बोलों का प्रयोग होता है। लेकिन इस नियम का बहुत कठोरता से पालन नहीं किया जाता है। किसी भी ताल में खाली के दो विभाग एक साथ नहीं होते हैं। जबकि ताली के कई विभाग एक साथ हो सकते हैं। खाली को निशब्द क्रिया भी कहते हैं। दक्षिण भारतीय ताल पद्धति में इसके लिए विसर्जितम् शब्द का प्रयोग किया जाता है।

भातखंडे ताल पद्धति में ताली दर्शाने के लिए क्रमश: ताली की संख्या लिखी जाती है तथा इसे '0' चिह्न से दर्शाते हैं। उदाहरणस्वरूप तीनताल—

बोल	धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
भातखंडे पद्धति	×	2	0	3

सम

किसी भी ताल की प्रथम मात्रा पर सम होती है। गीत, गत अथवा नृत्य में इस स्थान पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। वैसे तो सम किसी भी ताल की प्रथम मात्रा को कहते हैं, परंतु अपवाद स्वरूप रूपक ताल को छोड़ दें तो सम पर प्राय: ताली ही होती है। इसलिए ताल की अन्य मात्राओं की अपेक्षा इस मात्रा पर अधिक बल दिया जाता है। इसे हाथ पर ताल देकर भी दिखाया जाता है।

सम किसी भी ताल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान होता है। संगीत में आनंद का केंद्र सम ही है। भातखंडे ताल लिपि पद्धति में इसे (×) से दर्शाया जाता है। जब हम कोई बंदिश गाते हैं या नृत्य में तत्कार इत्यादि पेश करते हैं तो सम की महत्ता समझ में आती है। गीत, वाद्य और नृत्य को लय के अनुसार कलाकार स्वरों या टुकड़ों से अलंकृत करता है। इस अलंकरण के पश्चात् जब

© NCERT not to be republished

कलाकार सम पर आकर मिलता है या समाहित होता है तो एक अलग भाव की सृष्टि होती है। गायक, वादक और नर्तक 'सम' को अपने घर जैसा मानते हैं। जिस तरह प्रात:काल एक व्यक्ति कामकाज के लिए निकलता है, समयानुसार विभिन्न तरह के क्रियाकलापों से कार्य को निपटाकर रात को उसी घर में लौट आता है, ठीक इसी प्रकार कलाकार एक मुखड़े को गाकर-बजाकर प्रदर्शन आरंभ करता है। मुखड़े के बाद सम आते ही विभिन्न तरह के टुकड़े, लयकारियों का सहारा लेकर मूल स्वर के साथ अपनी कला को उभारते हुए वापस सम पर आकर मिलता है।

भातखंडे ताल-लिपि में रूपक ताल

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7
ताल	तीं	तीं	ना	धी	ना	धी	ना
चिह्न	⊗			1		2	

ठेका

ठेका उत्तर भारतीय संगीत की वह विशेषता है जो अन्य संगीत शैलियों में लगभग नहीं के बराबर पाई जाती है। किसी भी ताल का वह मूल बोल, जिसके द्वारा उस ताल को पहचाना जाता है, उस ताल का ठेका कहलाती है। इस ठेके की रचना उस ताल की प्रकृति, गति प्रकार और ताली, खाली, विभाग आदि को ध्यान में रखकर की जाती है, जैसे— झपताल की गति अगर 2/3/2/3 की है तो इसका ठेका उसी प्रकार चलेगा।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ताल	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
चिह्न	×		2			0		3		

उल्लेखनीय है कि कर्नाटक संगीत और पाश्चात्य संगीत में ताल तो हैं, किंतु उनकी शैली में ठेके के सुनिश्चित बोल नहीं हैं। गायन की प्रकृति के अनुसार, ताल के स्वरूप को ध्यान में रखकर, अनुकूल बोलों का वादन किया जाता है।

आवर्तन या आवृत्ति

ताल को हमेशा से चक्ररूप में प्रदर्शित किया जाता रहा है। अत: किसी ताल की प्रथम मात्रा से अंतिम मात्रा के पूर्ण होने तक अर्थात् सम से सम तक के कालखंड को उस ताल का एक आवर्त, आवृत्ति या आवर्तन कहते हैं। दूसरी बार जब वह ताल आरंभ होता है, वह उसका दूसरा आवर्तन कहलाता है। उदाहरण के लिए, सूलताल का एक आवर्तन 10 मात्रा का होता है। 10 मात्रा बजने के बाद फिर दूसरा आवर्तन शुरू होता है।

© NCERT not to be republished

तिहाई और इसके प्रकार (दम तथा बेदम)

जब किसी छोटे से बोल समूह को तीन बार एक जैसा गाया, बजाया या नाचा जाता है तो उसे तिहाई या तीया कहते हैं। तिहाई का भारतीय संगीत की हर विधा में महत्वपूर्ण स्थान है। तबला वादन के क्षेत्र में अनेक बोल, जैसे— पेशकर, कायदा, बाँट, रेला, टुकड़ा और परन आदि का समापन तिहाई से ही होता है। वस्तुत: तिहाई किसी भी बोल का समापन अंश होता है।

उदाहरण के लिए, दिल्ली घराने के एक पारंपरिक कायदे की तिहाई नीचे दर्शाई तालिका में दी गई है।

धातिटधा तिटधाधा तिटधागे तिनगिन	धा ऽ धातिटधा तिटधाधा	तिटधागे तिनगिन धा ऽ	धातिटधा तिटधाधा तिटधागे तिनगिन	धा
×	2	0	3	×

लेकिन पिछले कुछ वर्षों में तिहाई की भूमिका का काफ़ी विस्तार हुआ है। अब स्वतंत्र तिहाइयाँ भी बनने लगी हैं। उनके आकार भी बढ़ने लगे हैं। कई बार तो कलाकार कई तरह की चमत्कारिक तिहाइयों का भी प्रयोग करते हैं। इसके दो प्रकार— दमदार तिहाई और बेदम तिहाई विशेष महत्वपूर्ण हैं।

दमदार तिहाई— जब तिहाई के प्रत्येक भाग के बाद थोड़ा रुका जाए, जिसे दम लेना या विराम अथवा विश्रांति भी कहा जा सकता है तो उस तिहाई को दमदार तिहाई की श्रेणी में रखा जाता है, जैसे— झपताल की यह तिहाई—

तिटकत गदिगन	धा ऽ तिटकत	गदिगन धा	ऽ तिटकत गदिगन	धा
×	2	0	3	×

बेदम तिहाई— जब तिहाई के तीनों भागों के बीच कोई भी अंतराल न हो और तिहाई में प्रयुक्त सभी वर्ण समान वज़न और अनुपात के हों तो उसे बेदम तिहाई के अंतर्गत रखा जाता है। बेदम तिहाई के संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि सभी तालों में इसकी रचना संभव नहीं है। झपताल में बेदम तिहाई—

धाधा तिट	धाती धाधा धाति	टधा तीधा	धाधा तिट धाती	धा
×	2	0	3	×

त्रिताल में बेदम तिहाई—

घेना धागे धीना गीना	धाती धाघे नाधा गेधी	नगी नाध तीधा घेना	धागे धीना गीना धाति	धा
×	2	0	3	×

कायदा

कायदा शब्द अरबी भाषा से बना है, जिसका अर्थ है— बंधन या नियम। कायदा के साथ एक और शब्द अभिन्नता से जुड़ा होता है— कायदा-कानून। कायदा का अर्थ है पद्धति अथवा किसी

© NCERT not to be republished

भी कार्य को करने का ढंग या सलीका। अंग्रेज़ी में इसके लिए *मेथड* शब्द का प्रयोग होता है। तबला वादन की शिक्षा मुख्यतः कायदे से ही आरंभ होती है। इसकी रचना मूलतः उन्हीं तालों में की जाती है, जिनमें स्वतंत्र वादन किया जाता है। अत: इस रचना में कुछ प्रतिबंध, पाबंदियाँ होती हैं। कायदा तबले पर बजने वाली उस विस्तारशील रचना को कहते हैं जिसके दो भाग होते हैं— पहला भाग भरा और दूसरा खाली का होता है तथा जिसका विस्तार पलटों के रूप में किया जाता है। कायदा मूल रूप से तबला वाद्य की ही बंदिश है। किसी अन्य अवनद्ध वाद्य पर कायदे नहीं बजते। कायदा की रचना करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिस ताल में कायदा हो, उस ताल के विभाग और ताली, खाली के अनुरूप हो। कायदे की मूल रचना को ठाह, दुगुन व चौगुन में बजने के बाद पलटों के रूप में विस्तार करते हुए इसका समापन तिहाई के साथ किया जाता है।

एकताल में कायदा—

धातीधागे धिनगिन	तिरकिटतकधा गिनधेन	धागेतिरकिट तिनकिन
×	0	2
तातीताके तिनकिन	तिरकिटतकत किनधेन	धागेतिरकिट धिनगिन
0	3	4

एक अन्य पारंपरिक कायदा (त्रिताल) में (दिल्ली घराना)—

धाति टधा तिट धाधा	तिट धागे तिन किन	ताती टता तिट ताता	तिट धागे धिन गिन
×	2	0	3

कायदे के दो भाग होते हैं —खुली और मुँदी। पहले भाग में खुले बोलों का प्रयोग होता है, जैसे— धा धा ति ट धा धा ति ना और दूसरे भाग के आधे में बंद तथा आधे में खुले वर्णों का प्रयोग होता है, जैसे— ता ता ति ट, धा धा धि ना।

पलटा

भारतीय संगीत के क्षेत्र में सृजनशीलता का काफ़ी महत्वपूर्ण स्थान है। एक छोटी-सी रचना को घंटों अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय देते हुए गाया-बजाया जाता है। इसे विस्तार करना भी कहते हैं। जब किसी कायदे के वर्ण समूहों को सुंदर ढंग से उलट-पलट कर और विभिन्न संयोजनों द्वारा विस्तार किया जाता है तो इन्हें पलटा, प्रकार, पेंच, किस्में, विस्तार आदि कहते हैं। पलटा करने की क्षमता से ही किसी कलाकार की रचनात्मकता का मूल्यांकन किया जा सकता है। मूलतः जिन बोलों से कायदा बनाया जाता है, उन्हीं बोलों से उसका विस्तार किया जाता है। विस्तार के दौरान या पलटे करने में बाहर के बोलों का प्रयोग वर्जित होता है। उदाहरण के लिए, तीनताल में एक कायदा व कुछ पलटे अग्रलिखित हैं—

© NCERT not to be republished

कायदा

धाति टधा तिट धाधा | तिट धागे तिन किन | ताति टता तिट ताता | तिट धागे धिन गिन |
× | 2 | 0 | 3 |

अब इस कायदे में प्रयुक्त धा, तिट, धागे, तिनकिन के आधार पर इसके पलटे किए जा सकते हैं, जैसे—

पलटा 1

धाति	टधा	धाति	टधा	धाधा	तिट	धिन	गिन	|
धाति	टधा	तिट	धाधा	तिट	धागे	तिन	किन	|
ताति	टता	ताति	टता	ताता	तिट	तिन	किन	|
धाति	तथा	तिट	धाधा	तिट	धागे	धिन	गिन	|

पलटा 2

तिट	तिट	धाधा	तिट	तिट	धागे	तिन	किन	|
तिट	तिट	धाधा	तिट	तिट	धागे	तिन	गिन	|
तिट	तिट	ताता	तिट	तिट	ताके	तिन	किन	|
धाति	टधा	तिट	धाधा	तिट	धागे	धिन	गिन	|

पलटा 3

धागे	धिन	गिन	धिन	गिन	धागे	धिन	गिन	|
धाति	तधा	तिट	धाधा	तिट	धागे	तिन	किन	|
ताके	तिन	किन	तिन	किन	ताके	तिन	किन	|
धाति	टधा	तिट	धाधा	तिट	धागे	धिन	गिन	|

पलटा 4

धिन	गिन	धिन	गिन	धिन	गिन	धिन	गिन	|
धाति	टधा	तिट	धाधा	तिट	धागे	तिन	किन	|
तिन	किन	तिन	किन	तिन	किन	तिन	किन	|
धाति	टधा	तिट	धाधा	तिट	धागे	धिन	गिन	|

इसी प्रकार से नाना प्रकार के पलटे बनाए जाते हैं, जिससे एक ही कायदा हर बार नए रूप, नए रंग में सामने आता है और सुनने वालों को विविधता का बोध कराता है। विस्तार की यह क्रिया हिंदुस्तानी संगीत की बहुत बड़ी विशेषता है।

© NCERT not to be republished

रेला

रेला का अर्थ है— समूह या धारा प्रवाह, जैसे— आदमियों का रेला, पानी का रेला आदि। तबले के वर्णों से निर्मित ऐसा बोल जो आकार में छोटा, सुनने में कर्णप्रिय और बजाने में गति प्रधान हो, रेला कहलाता है। इसमें तिरकिट, धिनगिन, धिड़नग, धिरधिर किटतक आदि वर्णों की प्रधानता होती है। अत्यंत द्रुत लय में बजने वाले इस बोल का विस्तार भी पलटों के माध्यम से किया जाता है। एकल वादन में रेला का आधार बनाकर टुकड़े, परन, गत, फ़र्द आदि को प्रस्तुत किया जाता है।

त्रिताल में एक पारंपरिक रेला

धातिर किटतक धिरधिर किटतक धिरधिर किटतक तातिर |

किटतक तातिर किटतक तिरतिर किटतक | धिरधिर किटतक धातिर किटतक |

मुखड़ा और मोहरा

मुखड़ा और मोहरा समानार्थी और एक ही उद्देश्य से जुड़े होने के बावजूद आपस में कुछ भिन्नता रखते हैं। काम दोनों का एक ही है, सम अर्थात् ठेके का मुख दिखलाना। गायन और स्वर वाद्यों की अनेक रचनाएँ सीधे सम से न शुरू होकर अन्य स्थानों से भी शुरू होती हैं और ये रचनाएँ चाहे जहाँ से भी शुरू होती हों, उस स्थान को मुखड़ा कहा जाता है। सम की तरह मुखड़े का स्थान निर्धारित नहीं होता है। लेकिन तबला एवं पखावज वादक के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान सम होता है। इसी सम को स्पष्ट करने के लिए तबला वादक दूसरी, चौथी, पाँचवीं या आठवीं मात्रा आदि की आकर्षक और गतिमान बोलों की कोई रचना बजाकर सम को जब प्रदर्शित करते हैं तो उस रचना को मुखड़ा और मोहरा कहा जाता है।

सामान्य तौर पर मुखड़ा और मोहरा एक ही जैसी रचना है, किंतु कुछ लोग इन दोनों में कुछ अंतर मानते हैं। उनके अनुसार मुखड़ा आकार में छोटा होता है और मोहरा बड़ा। साथ ही, मोहरा के अंत में एक तिहाई भी जुड़ी होती है, जबकि मुखड़ा में यह ज़रूरी नहीं। मुखड़ा और मोहरा के संबंध में यह भी याद रखना चाहिए कि किसी भी ताल का मुखड़ा या मोहरा उसके एक आवर्तन से अधिक का नहीं होना चाहिए।

उदाहरण के लिए, किसी भी ताल के अंत में अगर—

कतेटेतगिनतक तिटकतगदिनगन धा |

धातिना किटितकतातिर किटितकतिरकिट तकतातिरकिट धा |

© NCERT not to be republished

चार मात्राओं के बोल बजाए जाएँ तो वे मुखड़ा कहलाएँगे, किंतु अगर त्रिताल के अंतिम आठ मात्राओं में—

धातिन किटितकतातिर किटितकतिरकिट तकतातिरकिट |

धातिरकट तकतातिरकिट धातिरकिट तकतातिरकिट धा |

0 ×

का वादन किया जाए तो वह मोहरा कहलाएगा।

त्रिताल में उदाहरणस्वरूप आठ मात्रा का एक और मोहरा—

त्रिधिन किटत धातिरकिटतक तातिरकिटतक |

0

तिरकिटतकता तिरकिटधात्ति धा, धाती धा, धाती | धा

3 ×

टुकड़ा

तबले के खुले और ज़ोरदार वर्णों से निर्मित वह रचना जो कम से कम एक आवर्तन की हो, जिसके अंत में तिहाई भी हो और जो अविस्तारशील होने के कारण सिर्फ़ एक ही बार द्रुत लय में बजाई जाती हो, टुकड़ा कहलाती है। स्वतंत्र तबला वादन और नृत्य की संगति में इसका विशेष प्रयोग होता है।

उदाहरणस्वरूप त्रिताल में दो टुकड़े

1	धाधाधा दींदींदीं नानाना तिटतिटतिट ×	कतेटेकतेटे कतेटेकऽत धाऽऽकडत धाऽऽकडत 2	
	धाऽऽ कतेटेकऽत धाऽऽकडत धाऽऽकडत 0	धाऽऽ कतेटेकऽत धाऽऽकडत धाऽऽकडत 3	धा ×
2	धगेतेटे तगतेटे क्रिधाऽक्रि धाडकिटितक ×	दींदीं नानानाना कतेटेधा ऽकऽत 2	
	धाऽकत धाऽकते टेधाऽक ऽतधाऽ 0	कतधाऽ कतेटेधा ऽकतधा धाडकत 3	धा ×

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नाद किसे कहते हैं?
2. श्रुति को पारिभाषित कीजिए।

© NCERT not to be republished

3. लय को पारिभाषित कीजिए तथा लय के प्रकार बताइए।
4. भातखंडे ताल-लिपि के अनुसार सम को पारिभाषित करते हुए उसका चिह्न बताइए।
5. रेला किसे कहते हैं?
6. कायदा को पारिभाषित कीजिए।
7. तिहाई को उदाहरण सहित समझाइए।
8. ताल में ताली व खाली के महत्व को समझाइए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. नाद की जाति अथवा गुण से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित समझाइए।
2. 'श्रुयते इति श्रुति' से आप क्या समझते हैं? विस्तारपूर्वक समझाइए।
3. हिंदुस्तानी संगीत में किस प्रकार के स्वर पाए जाते हैं? चिह्नों द्वारा सभी स्वरों को लिखिए।
4. *संगीत रत्नाकर* में वर्ण को किस तरह परिभाषित किया गया है?
5. राग के सभी लक्षणों की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।
6. औड्व-सम्पूर्ण जाति के किसी एक राग का विवरण कीजिए।
7. द्रुत लय से आप क्या समझते हैं?
8. तीनताल में एक रेला लिखिए।

सही और गलत बताइए

1. किसी भी ताल की प्रथम तथा अंतिम मात्रा को सम कहते हैं।
2. मंद्र, मध्य तथा तार सप्तक के प्रकार हैं।
3. रूपक ताल में 10 मात्राएँ होती हैं।
4. प्रत्येक ताल के कुछ बोल होते हैं, जिन्हें विभाग कहा जाता है।
5. जब तिहाई के प्रत्येक भाग के बाद थोड़ा रुका जाए तो उसे दमदार तिहाई कहते हैं।
6. पलटा, प्रकार, पेंच, किस्में व विस्तार समानार्थी शब्द हैं व कायदे के विस्तार में प्रयुक्त होते हैं।
7. ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जो स्वर तथा वर्ण से सुशोभित हो, उसे राग कहते हैं।
8. स्वर जब ऊपर से नीचे की ओर आते हैं, तो उसे आरोह कहते हैं।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. संगीत का आधार .... है, नाद से ...., श्रुति से .... तथा स्वर से .... की उत्पत्ति होती है।
2. आघात अथवा घर्षण से उत्पन्न ध्वनि को .... नाद कहते हैं।
3. सात स्वरों के समूह को .... कहते हैं।

© NCERT not to be republished

4. योयं ध्वनि .... , ... विभूषीत:।
5. जिस राग में छह स्वर गाए जाते हैं वह .... जाति का राग होता है।
6.

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धिं	धिं	....	....	तू	ना	....	....	धागे	तिरकिट	....	....

7. किसी भी ताल की प्रथम मात्रा में अंतिम मात्रा तक का क्षेत्र .... कहलाता है।

सुमेलित कीजिए

(क) एकताल	1. 2/3/2/3
(ख) आहत	2. खाली
(ग) तिहाई	3. सप्तक
(घ) सम	4. 12 मात्रा
(ङ.) मंद्र-मध्य	5. नाद
(च) विसर्जितम	6. बेदम
(छ) विकृत स्वर	7. प्रथम मात्रा
(ज) झपताल	8. <u>रे</u> <u>ग</u> <u>ध</u> <u>नि</u>

गतिविधि

नीचे दिए गए सांगीतिक शब्दों का उपयोग करते हुए रिक्त स्थानों को भरिए। (उत्तर कुंजी में पहेली संख्या 2 पृष्ठ संख्या 92 देखें)

स्वर, कायदा, पेशकार, राग, टुकड़ा, विषम, वर्ण, मोहरा, आहत, लय, मुखड़ा, अनाहत, ताल, आरोह, ताली, पकड़, औड्व, विभाग, षाड्व, सम, सम्पूर्ण, ठेका, आन्दोलन, आवर्तन, तारता, आवृत्ति, तीव्रता, काल, परन

आ			स				ल	
	बि					का		
		टु			स्व			
	प		ड़		र	ता	ली	
मु						प		
		अ	पे		का		षा	स
			आ					म्पू
	आ				औ			
अ			त					

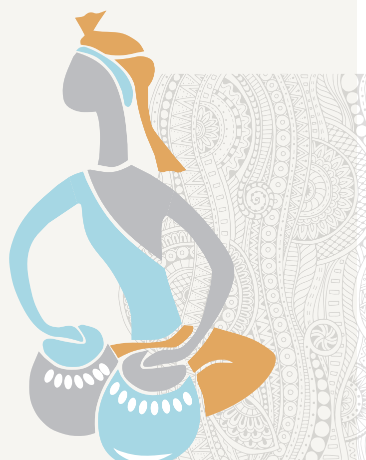

© NCERT not to be republished

नत्थू खाँ

दिल्ली घराने के महान तबला वादक उस्ताद नत्थू खाँ का जन्म सन् 1875 में दिल्ली में हुआ था। इनके पिता उस्ताद बोली बख्श और पितामह उस्ताद काले खाँ प्रसिद्ध तबला वादक थे। नत्थू खाँ की गिनती अपने समय के श्रेष्ठ तबला वादकों में होती है। यह उनके वादन का ही कमाल था कि फ़र्रूखाबाद घराने के प्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद अमीर हुसैन खाँ और उस्ताद अहमद जान थिरकवा तथा अजराड़ा घराने के प्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ ने भी उनसे तबला सीखा। इनके अन्य शिष्यों में उस्ताद शमशुद्दीन खाँ, हरेंद्र किशोर राय चौधरी और केशवचंद्र बैनर्जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उस्ताद नत्थू खाँ दिल्ली घराने का शुद्ध तबला बजाते थे। ये अपनी परंपरा के प्रतिनिधि कलाकार थे और खलीफ़ा की पदवी से भी सम्मानित थे। दिल्ली के दो अँगुलियों का बाज इनकी विशेषता थी। पेशकार, कायदे और रेलों का जिस तरह एक-एक बंद खोलते हुए ये विस्तार करते थे, उससे उनके चिंतन का पता लगता था। दो अँगुलियों का कर्णप्रिय सम्मोहक वादन कानों के रास्ते से होकर सीधे दिल तक उतरता था। उस्ताद नत्थू के लिए उस युग के तबला वादक कहते थे कि जब वे पेशकार अथवा कायदे का विस्तार करते थे तो ऐसा लगता था कि हर बार एक नया पेशकार या नया कायदा सुन रहे हैं। तित, तिरकट और धिरधिर किटितक जैसे वर्ण समूहों वाले बोलों को वे अत्यंत तीव्र गति में बजाते थे। उस्ताद अमीर हुसैन खाँ ने उस्ताद नत्थू खाँ के तबले पर एक बार अपनी राय देते हुए कहा था, "उस्ताद नत्थू खाँ साहब के हाथ की तैयारी असाधारण थी। उनकी दो अँगुलियों से बजने वाले धिरधिर से प्रभावित होकर मैंने दो अँगुलियों के धिरधिर का रियाज किया है।"

उस्ताद नत्थू खाँ के जीवन का उत्तरार्द्ध कोलकाता में व्यतीत हुआ। वहाँ उन्होंने दिल्ली घराने के तबले का खूब प्रचार-प्रसार किया तथा कई लोगों को शिक्षा प्रदान की। उन दिनों स्वतंत्र तबला वादन का बहुत अधिक प्रचलन नहीं था। स्वतंत्र तबला वादन को लोकप्रिय बनाने में उनकी बड़ी भूमिका थी। उनके वादन से प्रभावित होकर एच.एम.वी. कंपनी ने उनके एकल वादन की एक ध्वनि मुद्रिका भी बनाई थी। वे प्रथम ताबलिक थे जिनके एकल वादन का एल.पी. रिकॉर्ड बना था। दिल्ली घराने के तबले को लोकप्रियता की नई ऊँचाई देने वाले इस महान् ताबलिक का निधन सन् 1940 में 65 वर्ष की उम्र में हुआ। उनके विषय में, उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ का कथन था— "हमारे उस्ताद नत्थू खाँ साहब जब तबला बजाते थे, तब वे सोने की स्याही से तबले की खूबियों को लिखते थे।"

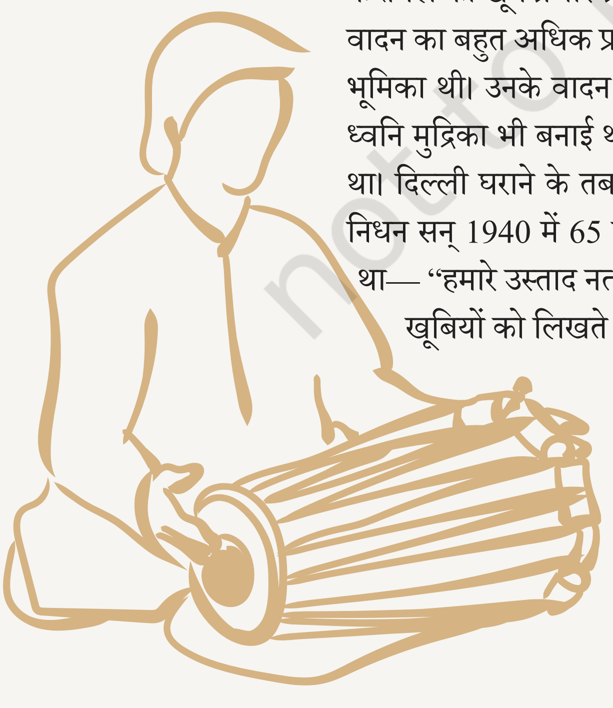

© NCERT not to be republished

7 भारतीय संगीत में वाद्य वर्गीकरण

भारतीय संगीत में प्राचीन काल से ही वाद्य यंत्रों की एक समृद्ध परंपरा चली आ रही है। यहाँ वाद्यों का अर्थ उन यंत्रों से है जिनसे ध्वनि उत्पन्न की जाती है। वाद्यों का उद्देश्य विशिष्ट वस्तु एवं पद्धति से निर्मित, किसी यंत्र पर थाप देकर, फूँककर या तारों में कंपन उत्पन्न करके लयबद्ध तरीके से संगीतमय ध्वनि उत्पन्न करना है। यह ध्वनि विशिष्ट स्वर समुदाय एवं तालों के शास्त्र अनुसार बजाई जाती है। प्रत्येक वाद्य एक विशेष ध्वनि उत्पन्न करता है, जिसमें भावनाओं का अद्‌भुत संचार होता है। विभिन्न वाद्यों की अपनी विशिष्ट कहानी होती है जो हमारे सांस्कृतिक इतिहास के क्रमिक विकास को दर्शाती है। रसोईघर के बरतनों— तश्तरी, थाली, चिमटे, चम्मच आदि भी संगीतमय संरचना के साथ वाद्यों के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं।

11153CH07

क्या आपने कभी कोई ऐसा वाद्य यंत्र देखा है, जो रसोईघर के बरतनों से मेल खाता हो?

भारतीय संगीतज्ञों ने अनगिनत वाद्य यंत्रों को सँवारा एवं निरंतर प्रयास से लोकप्रिय बनाया। इन प्रयासों के कारण भारतीय वाद्य यंत्रों ने विश्वभर में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। इन प्रयासों के कारण ही वाद्य यंत्रों ने नया स्वरूप भी धारण किया है, जैसे— रूद्र वीणा से सुरबहार और फिर सितार।

वाद्यों का प्रयोग विभिन्न युगों में अलग-अलग आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता रहा है, जैसे— दूर बैठे व्यक्ति को संकेत देने के लिए, जंगली जानवरों को भगाने के लिए, शिकार के

चित्र 7.1–घन वाद्य— थाली

चित्र 7.2–अवनद्ध वाद्य— घटम्

चित्र 7.3–घन वाद्य— हुडक्कु

© NCERT not to be republished

समय तथा उत्सव आदि में प्रसन्नता प्रकट करने के लिए वाद्यों का प्रयोग होता था। युद्ध भूमि में सैनिकों का हौसला बढ़ाने के लिए भी दुन्दुभी, शंख, ढोल, ताशा आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता था। सभी धर्मों में संगीत वाद्यों का उपासना से बहुत गहरा संबंध रहा है। इसीलिए मानव मन श्री कृष्ण को बाँसुरी बजाते हुए, सरस्वती को वीणा, शंकर को डमरू तथा गणेश को मृदंग बजाते हुए ही अपनी कल्पनाओं और उससे निर्मित चित्रों तथा मूर्तियों में देखता है। इसके अलावा, मंदिरों में पूजा अर्चना के समय घंटा, घंटी, शंख आदि का प्रयोग तथा मांगलिक कार्यों में शहनाई, ढोल, ढोलक, मंजीरा आदि का प्रयोग लोक जीवन में वाद्यों के महत्व को दर्शाते हैं। मानव शरीर को भी वाद्य यंत्र माना गया है। इसे 'गात्र वीणा' कहा गया है।

चित्र 7.4–प्राचीनकालीन वीणा (तत् वाद्य)

चित्र 7.5–डफ और हिमाचली शहनाई

'वाद्य' शब्द 'वद्' धातु से बना है, जिसका सामान्य अर्थ होता है— बोलना। सांगीतिक ध्वनि तथा गति प्रकट करने के उपकरण को वाद्य कहा जाता है।

संगीत में वाद्यों का महत्व

कंठ संगीत हो या नृत्य अथवा नाटक, सभी को अपने विस्तार के लिए, अपनी कला में आकर्षण पैदा करने के लिए तथा श्रोताओं को प्रभावित करने के लिए वाद्य यंत्रों की सहायता लेनी पड़ती है। साधारण श्रोताओं को भले ही वाद्य पर क्या बज रहा है, इसका ज्ञान न हो, लेकिन उसे सुनकर वह आनंद में डूब जाता है। वाद्यों का मुख्य कार्य गायन के माध्यम से अभिव्यक्त किए जा रहे भावों की प्रस्तुति को सुंदर बनाना है। जिस भाव और रस को शब्द और मानव कंठ व्यक्त करते हैं, उसी भाव को आकर्षक ढंग से प्रकट करने का प्रयास वाद्यों के द्वारा होता है। वाद्यों के अभाव में संगीत अपूर्ण-सा प्रतीत होता है।

चित्र 7.6–वीणा

© NCERT not to be republished

सर्वप्रथम वैदिक काल में हमें संगीत वाद्यों का वर्णन मिलता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उस काल में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का विकास हो चुका था। रामायण काल में वीणा और मृदंग द्वारा नृत्य की संगति का उल्लेख प्राप्त होता है तो महाभारत काल में महती वीणा, वेणु, दुन्दुभी, पुष्कर आदि वाद्यों के वर्णन मिलते हैं।

चित्र 7.7–तानपूरा

चित्र 7.8–सितार

संगीत वाद्यों का वर्गीकरण

आदिकाल से वर्तमान काल तक मानव विभिन्न प्रकार के सांगीतिक वाद्यों का प्रयोग करता रहा है। इन वाद्यों का उल्लेख संगीत के प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता है। भारतीय सांगीतिक वाद्यों के वर्गीकरण का आधार मुख्यत: ध्वनि रहा है। सर्वप्रथम भरतमुनि ने अपने ग्रंथ *नाट्यशास्त्र* में सांगीतिक वाद्यों का चतुर्विध वर्गीकरण किया है—

"तंत चैवावनद्धं च घन सुषिरमेव च्
चतुर्विध तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।"

— नाट्यशास्त्र 28/1

अर्थात् संगीत वाद्य चार प्रकार के होते हैं— तत्, अवनद्ध, घन एवं सुषिर।

उपरोक्त चार प्रकार के वाद्यों के लक्षण स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है—

"तंत तन्त्रीगतम् ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम्।
घंन तालस्तु विज्ञेय: सुषिरो वंश उच्यते।।"

— नाट्यशास्त्र 28/2

अर्थात् तत् तंत्रीवाद्य, अवनद्ध पुष्कर वाद्य, घन ताल वाद्य एवं सुषिर वंशी वाद्य हैं।

प्राचीन, मध्यकाल तथा वर्तमान काल के अधिकांश संगीतज्ञों एवं संगीत ग्रंथकारों ने भरत के चतुर्विध वर्गीकरण का अनुसरण करते हुए संगीत वाद्यों के चार प्रकार माने हैं—

(1) तत् (तंत्री) (2) अवनद्ध (3) घन (4) सुषिर

© NCERT not to be republished

तत् (तंत्री) वाद्य

तत् वाद्य वे वाद्य यंत्र होते हैं जिन पर तार या तंत्री के कंपन से स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। ये कंपन तार पर आघात या घर्षण द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। तत् श्रेणी के अंतर्गत वे वाद्य आते हैं जिन्हें अँगुलियों, मिज़राब या जवा आदि से आघात कर अथवा गज से घर्षण कर बजाते हैं। इसके अंतर्गत तानपुरा, वीणा, सितार, सरोद, वायलिन, सारंगी, इसराज आदि वाद्य आते हैं।

चित्र 7.9–रीड वाद्य

चित्र 7.10–राडोन्ग एवं सिक्किम का ड्रम

चित्र 7.11–हिमाचली शहनाई हेस्सी

चित्र 7.12–तबला एवं हारमोनियम (सुषिर) बजाते हुए कलाकार

अवनद्ध वाद्य

'अवनद्ध' संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है— मढ़ा हुआ, लपेटा हुआ या चारों तरफ़ से कसा हुआ। वे वाद्य यंत्र जो अंदर से खोखले होते हैं, जिनके मुख पर चमड़ा मढ़ा होता है तथा जिन पर हाथ से या डंडी से आघात करके ध्वनि निकाली जाती है, अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। अवनद्ध वाद्य मूलत: मिट्टी, लकड़ी या धातु के बने होते हैं। प्राचीन काल में मिट्टी या मृदा से बनाए जाने के कारण इन्हें साधारणत: मृदंग ही कहते थे।

प्राचीनकाल में निम्नलिखित अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है— भूमिदुन्दुभी, दुन्दुभी, पुष्कर, मृदंग, पटह, हुडुक्का, नगाड़ा आदि। वर्तमान में तबला, पखावज, मृदंगम्, कंजीरा, तविल, ढोलक, नाल, डफ, दुक्कड़, ढोल, खोल और पुंग आदि अनेक वाद्यों का प्रयोग हो रहा है।

सुषिर वाद्य

सुषिर वाद्यों के अंतर्गत वे वाद्य आते हैं जिनमें स्वरों की उत्पत्ति वायु के कंपन द्वारा होती है। इन वाद्यों में हवा भरकर या फूँककर स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। इन वाद्यों में वायु के दबाव को ही घटा-बढ़ा कर, स्वर ऊँचा-नीचा किया जाता है। इसके अंतर्गत बाँसुरी, शहनाई, शंख, नागस्वरम्, क्लेरोनेट, सैक्सोफ़ोन, हारमोनियम, ऑर्गन, माउथ ऑर्गन, एकॉर्डियन आदि वाद्य आते हैं।

© NCERT not to be republished

घन वाद्य

चित्र 7.13–घुँघरू व घंटी

घन वाद्य मूलत: लकड़ी, काँसा, पीतल आदि धातु से बनाए जाते हैं, जिन्हें आपस में टकराकर या डंडियों के प्रहार से बजाते हैं। इनका मुख्य कार्य लय धारण करना होता है। लोक संगीत में इनका प्रयोग अधिक होता है। इसके अंतर्गत आने वाले वाद्य हैं— घंटा, घंटी, झांझ, खरताल, मंजीरा, घुँघरू, मुरचंग आदि।

अवनद्ध वाद्य एवं उसके प्रकार

चित्र 7.14–खरताल

ताल संगीत का प्राण है और अवनद्ध वाद्य ताल-ठेकों को धारण करते हैं। आज हम अवनद्ध वाद्य के बिना संगीत की कल्पना भी नहीं कर सकते। अवनद्ध वाद्यों की संगति से संगीत लयबद्ध, तालबद्ध, मधुर और मनोरंजक हो जाता है। लगभग सभी अवनद्ध वाद्यों का विकास गायन, वादन और नृत्य की संगति करने के उद्देश्य से हुआ है। लेकिन वर्तमान में तबला और पखावज जैसे वाद्यों ने अपने नाद सौंदर्य और नाद वैचित्र्य के गुणों के कारण संगीत में अपना एक स्वतंत्र स्थान बना लिया है। आज संगीत समारोहों में तबला और पखावज का एकल वादन श्रोताओं के लिए आकर्षण का केंद्र होता है।

चित्र 7.15–मादल

चित्र 7.16–ढाक

इसके अतिरिक्त सामाजिक जीवन में भी अवनद्ध वाद्यों का अपना महत्व है। विभिन्न मांगलिक अवसरों यथा विवाह आदि में दुक्कड़, ढोल, ताशा जैसे अवनद्ध वाद्यों का वादन होता है। विभिन्न प्रकार के धार्मिक कार्यों में भी अवनद्ध वाद्यों का खूब प्रयोग होता है। मंदिरों में आरती के समय, संकीर्तन मंडलियों में, रथ यात्रा आदि में भी विभिन्न प्रकार के अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग होता है। युद्ध में सैनिकों में जोश भरने के लिए और उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करने हेतु ढोल और नगाड़े जैसे बड़े-बड़े अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग होता था। स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस पर सैनिकों की परेड के दौरान भी अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

अब हम वर्तमान काल में प्रचलित कुछ प्रमुख अवनद्ध वाद्यों की चर्चा करेंगे—

(1) मृदंगम्	(2) तविल (थविल)	(3) ढोलक
(4) खोल	(5) बौंगो	(6) कौंगो

मृदंगम्

मृदंगम् दक्षिण भारतीय संगीत का प्रमुख अवनद्ध वाद्य है। इसका प्रयोग गायन-वादन तथा नृत्य की संगति के लिए होता है। एक अवनद्ध वाद्य के रूप में यह वाद्य इतना महत्वपूर्ण है कि इसके बिना कर्नाटक संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

चित्र 7.17–मृदंगम् बजाते हुए कलाकार

यह दो मुखी वाद्य है जिसे लिटाकर बजाया जाता है। इसे बनाने के लिए मुख्यत: कटहल की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसका दायाँ मुख इसके बायें मुख की तुलना में थोड़ा छोटा होता है। मृदंगम् की लंबाई 22 से 24 इंच तक और इसके मध्य के घेरे का व्यास 12 इंच तक होता है। कर्नाटक संगीत में प्रयुक्त होने वाला मृदंगम् आकार-प्रकार में लगभग उत्तर भारतीय पखावज की तरह ही दिखता है, लेकिन इसकी संरचना तथा नाद में भिन्नता होती है। मृदंगम् की लंबाई पखावज की तुलना में कम होती है। इसके दायें मुख में लगने वाला चमड़ा पखावज में लगने वाले चमड़े की तुलना में अधिक मोटा होता है। मृदंगम् के दायें मुख के किनारे का यह चमड़ा स्याही के स्थान को छोड़कर पूड़ी के पूरे हिस्से को घेरे रहता है, जिस कारण मृदंगम् में चाँट और स्याही का भाग ही दिखाई पड़ता है, जबकि पखावज की पूड़ी, चाँट, लव और स्याही इन तीन भागों में बँटी होती है। दक्षिण भारत में इस स्याही को 'सोरू' कहते हैं। इसे लौह चूर्ण, पके चावल आदि के मिश्रण से बनाते हैं। मृदंगम् का बायाँ मुख भी पखावज की तुलना में छोटा होता है, जिस पर सूजी की 'पूलिका' लगाई जाती है। मृदंगम् के बायें मुख पर सूजी लगाने का स्थान छोटा रखा जाता है। मृदंगम् में दोनों मुखों की पूड़ियों को चमड़े की बद्धी से आपस में कसा जाता है, जिसे 'चटाई' या 'पिन्नल' कहते हैं। इसका दायाँ मुख ही मुख्य गायक या वादक के गाए जाने वाले स्वर में मिलाया जाता है।

तविल

तविल दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य का एक प्रमुख अवनद्ध वाद्य है। इसका प्रयोग मुख्य रूप से वहाँ के लोक संगीत, कर्नाटक शास्त्रीय संगीत एवं नागस्वरम् की संगति के लिए किया जाता है। तविल का ढाँचा लकड़ी का बना होता है। इसके निर्माण में मुख्यत: पनस (कटहल) की लकड़ी

© NCERT not to be republished

चित्र 7.18–तविल बजाते हुए कलाकार

का प्रयोग किया जाता है। इसके ढाँचे की लंबाई लगभग 18 इंच होती है। ढाँचे का मध्य भाग कुछ उभरा हुआ होता है। इसके दो मुख होते हैं। दाहिने मुख का व्यास बायें मुख के व्यास से अधिक होता है। इसके दाहिने मुख का व्यास लगभग 10 इंच एवं बायें मुख का व्यास लगभग 8 इंच होता है। कहीं-कहीं दोनों मुखों का व्यास एकसमान अर्थात् 8–8 इंच का भी होता है। इसके मुखों पर चमड़े की इकहरी परत का प्रयोग किया जाता है। दाहिने मुख पर गाय या भैंस का चमड़ा एवं बायें मुख पर बकरे के चमड़े का प्रयोग किया जाता है। दाहिने मुख के चमड़े को अधिक कसा जाता है, जबकि बायें मुख के चमड़े को थोड़ा ढीला रखते हैं और भीतर की ओर से लेप लगाया जाता है। दोनों मुखों को ढाँचे पर मढ़ने के लिए छह से सात बाँस की पतली पट्टियों तथा जूट व चमड़े से निर्मित गोलाकार चक्र का उपयोग किया जाता है। वर्तमान में, लोहे के खोखले रिंग का भी प्रयोग देखने को मिलता है। दोनों मुखों के चमड़ों को इन गोल चक्रों की सहायता से ढाँचे पर लगा देते हैं और भैंस के चमड़े की मोटी बद्धी द्वारा मज़बूती से कस देते हैं। इसकी बद्धियों को कसने के लिए मध्य भाग में चमड़े की चौड़ी बद्धी का प्रयोग किया जाता है। इस वाद्य को किसी विशेष स्वर में मिलाने की सुविधा नहीं होती। इसकी आवाज़ बहुत तीव्र होती है।

ढोलक

ढोलक उत्तर भारतीय संगीत में प्रचलित एक प्रमुख लोक अवनद्ध वाद्य है। इसका प्रयोग लोक संगीत में गायन की संगति के लिए किया जाता है। इसके दो मुख होते हैं। इसकी लंबाई लगभग 45 सेंटीमीटर और मध्य का व्यास लगभग 27 सेंटीमीटर का होता है। इसका दायाँ मुख बायें मुख की तुलना में थोड़ा छोटा होता है। दोनों मुखों पर चमड़े की पूड़ी लगी होती है। दोनों पूड़ियाँ सूत की डोरी की सहायता से एक-दूसरे से कसी होती हैं। इन बद्धियों के बीच में लोहे के छल्ले लगे होते हैं जिनकी सहायता से ढोलक को कसा जाता है। बायें मुख से निकलने वाली ध्वनि को गंभीर करने के लिए इसमें चमड़े की भीतरी सतह पर एक विशेष प्रकार का लेप लगाया जाता है। इसे अँगुलियों से बजाते हैं।

चित्र 7.19–हारमोनियम एवं ढोलक बजाते हुए कलाकार

© NCERT not to be republished

खोल

बंगाल, ओडिशा, असम और मणिपुर राज्यों के संगीत में खोल वाद्य प्रचलित है। कीर्तन परंपरा में इसका खूब प्रयोग होता है। इसका ढाँचा पकी हुई मिट्टी से बना होता है। इसके दायें मुख का व्यास लगभग 3½ इंच और बायें मुख का व्यास लगभग 7½ इंच का होता है। इसके मध्य भाग का व्यास लगभग 10 इंच का होता है। इस वाद्य की लंबाई 24 से 25 इंच तक होती है। मिट्टी का खोल भीतर से खोखला होता है। मिट्टी के खोल की सुरक्षा के लिए इसे ऊपर से एक चौड़े कपड़े की पट्टी से लपेट देते हैं, ताकि यह टूटने या चिटकने न पाए। इसके दोनों मुख तबला या मृदंग की भाँति मढ़े जाते हैं जो चमड़े की पट्टी से कसे रहते हैं। इसके बायें और दायें मुख पर तबले की भाँति लेप लगाया जाता है। लेप चावल की लेई, लौह चूर्ण और गोंद से बनती है। इसका दायाँ मुख ऊँचे स्वर में मिला होता है और बायें मुख का नाद गंभीर होता है। दोनों मुखों पर एक लंबी मज़बूत रस्सी बँधी होती है। नृत्य आदि के साथ इसे गले में लटका कर, खड़े होकर या बैठकर बजाया जाता है।

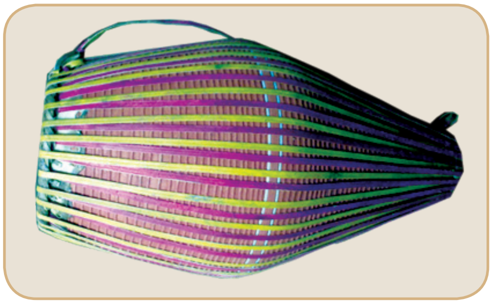

चित्र 7.20–खोल

बौंगो

बौंगो और कौंगो मूलत: अफ्रीकी वाद्य हैं। इनका प्रयोग अधिकतर भारतीय फ़िल्म संगीत में किया जाता है। बौंगो एक छोटा-सा अवनद्ध वाद्य है, जिसमें तबला वाद्य के समान दायाँ और बायाँ दो भाग होते हैं जो आपस में एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। इसका बायाँ मुख बड़ा और दायाँ मुख छोटा होता है। छोटे मुख पर पतली तथा बड़े मुख पर मोटे चमड़े की पूड़ी चढ़ाई जाती है। पूड़ी के किनारे को स्टील के रिंग में फँसाकर मुख पर कस दिया जाता है। रिंग के किनारों पर चार दिशाओं में चार स्टील की छड़ें फँसी होती हैं जो नीचे की तरफ़ पेंच द्वारा कसी जाती हैं। इन पेंचों की मदद से पूड़ी को ऊँचे या नीचे स्वर में मिलाया जा सकता है। बौंगो अधिकतर कुर्सी या स्टूल पर बैठकर बजाया जाता है। बजाते समय इसे दोनों घुटनों के बीच आगे की तरफ़ झुकाकर फँसा लेते हैं, जिससे इसे बजाने में सुविधा रहती है। ऊँची ध्वनि निकालने के लिए एक अँगुली का तथा नीची ध्वनि निकालने के लिए तीन या चार अँगुलियों को जोड़कर थाप जैसे आघात का प्रयोग किया जाता है। बौंगो के दोनों भागों में किसी भी एक भाग पर दोनों हाथों की अँगुलियों का प्रयोग वादन के लिए किया जा सकता है।

चित्र 7.21–बौंगो

© NCERT not to be republished

कौंगो

कौंगो वाद्य बौंगो से आकार में काफ़ी बड़ा होता है। कौंगो के तीन भाग होते हैं। ये तीनों भाग क्रम से बड़े, मध्यम और छोटे आकार के होते हैं। प्रत्येक भाग की ऊँचाई बराबर होती है, लेकिन बौंगो की तुलना में इसकी ऊँचाई अधिक होती है। तीनों भागों के मुखों के व्यास क्रमश: बड़े, मध्यम और छोट होते हैं। इन तीनों मुखों पर क्रमश: मोटी, मध्यम और पतले चमड़े की पूड़ी चढ़ाई जाती है। बौंगो के समान ही पूड़ी को स्टील की रिंग में फँसाकर, इसके मुख पर लगाया जाता है। रिंग के किनारों पर चार दिशाओं में चार स्टील की छड़ें फँसी होती हैं जो नीचे की तरफ़ पेंच द्वारा कसी जाती हैं। कौंगो को सुविधानुसार अलग-अलग स्वरों में मिलाया जा सकता है। कौंगो के तीनों भाग आपस में जुड़े होते हैं। इन्हें खड़ा करने के लिए नीचे स्टैंड लगा होता है। इसे खड़े होकर बजाया जाता है।

चित्र 7.22–कौंगो

इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा

इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा (इलेक्ट्रॉनिक तंबूरा या इलेक्ट्रॉनिक श्रुति बॉक्स) एक इलेक्ट्रॉनिक उपकरण है। यह इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा (तंबूरा) तार वाद्य या तानपुरा की ध्वनि को दोहराता है। इसका उपयोग गायक या गायिका या वाद्य यंत्र बजाने वाले कलाकार करते हैं। यह एक निरंतर ड्रोन जैसा स्थायी स्वर प्रदान करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। जिस तरह तानपुरे के स्वरों के साथ सुर मिलाकर गाया-बजाया जाता है, उसी तरह इलेक्ट्रॉनिक तानपुरे का भी प्रयोग किया जाता है। इलेक्ट्रॉनिक तानपुरे में टोन और वॉल्यूम को नियंत्रित करने के लिए एक या अधिक स्विच या बटन होते हैं। स्विच या बटन के द्वारा एक निश्चित स्वर या स्केल और वॉल्यूम में स्थापित किया जाता है। इसकी स्वर सीमा आमतौर पर एक से दो सप्तक होती है। स्वर या स्केल को बदलना, तानपुरा के चार तारों की गति में बदलाव लाना और मध्यम एवं पंचम स्वरों को राग के अनुसार बदलने के सभी विकल्प इलेक्ट्रॉनिक तानपुरे में होते हैं।

चित्र 7.23–इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा

इलेक्ट्रॉनिक तानपुरे का आविष्कार जी. राज नारायण ने सन् 1979 में किया था। पहला संस्करण कैपेसिटर, ट्रांज़िस्टर इत्यादि का उपयोग करके, तब की उपलब्ध तकनीक के आधार पर बना था। 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में, एक चिप पर पारंपरिक तानपुरा की सैंपल रिकॉर्डिंग का उपयोग करके इसके विभिन्न मॉडल तैयार किए गए थे।

© NCERT not to be republished

2000 के दशक में, इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा को भी एन्ड्रॉयड मोबाइल ऐप्लीकेशन में विकसित कर लिया गया, जिसे आज भी हम इस्तेमाल करते हैं। अधिकांश संगीतकारों के लिए इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा एक अत्यंत सुविधाजनक व्यावहारिक यंत्र है। यह यंत्र दोहरावदार ध्वनि पैदा करता है।

श्रुति बॉक्स या सुरपेटी

श्रुति बॉक्स (सुरपेटी) एक इलेक्ट्रॉनिक गैजट है। इसका उपयोग अभ्यास के दौरान या संगीत कार्यक्रमों में एक ड्रोन (एक स्थायी स्वर) प्रदान करने के लिए किया जाता है। श्रुति बॉक्स का उपयोग शास्त्रीय गायन में निरंतर किया जाता है। तमिल और तेलुगु में इसे श्रुति पेटी और हिंदी में सुरपेटी कहते हैं।

चित्र 7.24–श्रुति बॉक्स या सुरपेटी

इलेक्ट्रॉनिक तालमाला

इस उपकरण के आविष्कारक भी जी. नारायण हैं। इसमें उत्तरी तथा दक्षिणी, दोनों पद्धतियों के विभिन्न तालों के ठेके विद्यमान होते हैं। इसमें विभिन्न लयों, जैसे— विलंबित, अति विलंबित, मध्य और द्रुत आदि के ठेकों को व्यवस्थित किया जा सकता है। इसका उपयोग किसी संगतकार की अनुपस्थिति में अभ्यास के दौरान करना उचित होगा। यह एक कृत्रिम उपकरण है जो संगतकार का स्थान नहीं ले सकता है।

चित्र 7.25–इलेक्ट्रॉनिक तालमाला

ऐप्स

ऐप का पूरा नाम ऐप्लीकेशन होता है जो एक सॉफ़्टवेयर का रूप है। यह एक निर्धारित कार्य प्रणाली के तहत कार्य करता है। संगीत की दृष्टि से, जैसे— गाना सुनने का ऐप, गाना रिकॉर्ड करने का ऐप, गाने को संगीतमय बनाने का ऐप, यह किसी भी प्रकार का हो सकता है। ऐप को इलेक्ट्रोनिक डिवाइस, जैसे— मोबाइल, लैपटॉप आदि में इस्तेमाल किया जाता है। इसमें तानपुरा, नगमा, संगति के लिए ठेके आदि की सुविधा सुरीलेपन के साथ उपलब्ध रहती है।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. रूद्र वीणा से प्रेरणा लेकर कौन-सा वाद्य यंत्र बना है?
   (क) सुरबहार (ख) सरोद
   (ग) तानपुरा (घ) वायलिन
2. गज के घर्षण द्वारा बजाए जाने वाले वाद्य किस श्रेणी में आते हैं?
   (क) सुषिर वाद्य (ख) अवनद्ध वाद्य
   (ग) तत् वाद्य (घ) घन वाद्य
3. मानव शरीर की तुलना किस प्राचीन वाद्य यंत्र से की जाती है?
   (क) पटह (ख) गात्र वीणा
   (ग) वेणु (घ) पुष्कर
4. जवा द्वारा बजाए जाने वाला वाद्य यंत्र कौन-सा है?
   (क) तानपुरा (ख) सरोद
   (ग) सितार (घ) सारंगी
5. चमड़े अथवा खाल से मढ़े हुए खोखले वाद्य यंत्र किस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं?
   (क) अवनद्ध वाद्य (ख) तत् वाद्य
   (ग) घन वाद्य (घ) सुषिर वाद्य
6. क्लेरोनेट, नागस्वरम् कौन-सी श्रेणी के वाद्य यंत्र हैं?
   (क) तत् वाद्य (ख) सुषिर वाद्य
   (ग) अवनद्ध वाद्य (घ) घन वाद्य

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. किस श्रेणी के संगीत वाद्यों का प्रयोग शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा लोक संगीत में अधिक होता है?
2. सितार या तानपुरे का तुम्बा किस वस्तु से बनता है?
3. तबले की स्याही किस वस्तु से निर्मित होती है?
4. घन वाद्यों को मुख्यत: किस प्रकार बजाया जाता है?
5. अवनद्ध कौन-सी भाषा का शब्द है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संगीत वाद्य से क्या तात्पर्य है?
2. मानव शरीर को किस प्रकार का वाद्य यंत्र माना गया है?

© NCERT not to be republished

3. संगीत में वाद्यों का क्या महत्व है?
4. तत् वाद्य किसे कहते हैं? उदाहरण सहित बताइए।
5. महाभारत कालीन किन्हीं चार वाद्यों के नाम लिखिए।
6. विभिन्न काल खंडों में मुख्यत: किन-किन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संगीत वाद्यों का प्रयोग होता था?
7. अवनद्ध वाद्यों में लगने वाला चमड़ा किन-किन पशुओं से प्राप्त होता है? किन्हीं तीन के नाम लिखिए।
8. संगीत में अवनद्ध वाद्य से क्या तात्पर्य है?
9. प्राचीन काल के किन्हीं चार अवनद्ध वाद्यों के नाम बताइए।
10. तबला अथवा तानपुरे का चित्र बनाकर उस वाद्य यंत्र के अंगों को नामांकित कीजिए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. वैदिक काल में शास्त्रीय संगीत व सामान्य जन साधारण के जीवन में संगीत वाद्यों का क्या महत्व रहा है? इसका उल्लेख कीजिए।
2. तंत्री वाद्य से आप क्या समझते हैं? उदाहरण सहित लिखिए।
3. तत् व सुषिर वाद्यों में उदाहरण सहित अंतर बताइए।
4. तत्, सुषिर, घन एवं अवनद्ध वाद्यों की तुलना कीजिए।
5. ढोलक, मृदंगम् एवं तविल वाद्यों की सचित्र तुलना कीजिए।
6. किसी इलेक्ट्रॉनिक वाद्य यंत्र की उपयोगिता के विषय में विस्तार से लिखिए।

सुमेलित कीजिए

(क) खंजरी	1. भरतमुनि
(ख) अवनद्ध	2. जी. राज नारायण
(ग) खोल	3. चमड़ा
(घ) *नाट्यशास्त्र*	4. तमिलनाडु
(ङ) इलेक्ट्रॉनिक तानपुरा	5. स्थायी स्वर
(च) तविल	6. हारमोनियम
(छ) सुषिर	7. पश्चिम बंगाल
(ज) ड्रोन	8. घन वाद्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. इसराज वाद्य .... श्रेणी का वाद्य है।

not to be republished © NCERT

2. सुषिर वाद्यों में स्वर की उत्पत्ति ------------------------------------ द्वारा होती है।
3. सुषिर वाद्यों में वायु के दबाव को ---------------------------- स्वर ऊँचा-नीचा किया जाता है।
4. चार वाद्यों के वर्गीकरण का उल्लेख सर्वप्रथम ---------------------------------- में मिलता है।

विद्यार्थियों हेतु गतिविधि

1. संगीत के वाद्यों के चारों वर्गों के चित्रों का संग्रह कर चार्ट पेपर पर चिपकाकर कोलाज बनाइए। विद्यार्थी डिजिटल चित्र भी बना सकते हैं।
2. तुम्बा युक्त वाद्यों को देखिए तथा उनके चित्र बनाइए और विवरण दीजिए।
3. सितार मिज़राब से छेड़ी जाती है। उसकी आकृति बनाइए और विचार कीजिए कि क्या यह किसी गणितीय आकृति को दर्शाती है।
4. अपनी पसंद के संगीत वाद्य पर परियोजना निम्नलिखित बिंदुओं के अनुसार बनाइए—
   - वह वाद्य किन वस्तुओं से बना है?
   - उसकी बनावट का तरीका क्या है?
   - वाद्य के विभिन्न अंगों को नामांकित कीजिए।
   - वाद्य से संबंधित कुछ प्रसिद्ध कलाकारों के नाम लिखिए। उन्हें कौन-से पुरस्कार प्राप्त हुए हैं?
   - आज के समय में इस वाद्य का प्रयोग किस प्रकार हो रहा है?
   - किसी भी अवनद्ध वाद्य को त्रि-आयामी आकार में बनाकर उसका नामांकन कीजिए।

शिक्षक हेतु गतिविधि

1. पसंद के गीतों पर बच्चों द्वारा संगीत वाद्यों को बजवाएँ, जैसे— कौंगो, बौंगो, तबला, हारमोनियम, गिटार, पत्ते से बनी सीटी, पत्थरों द्वारा बजाई गई लय या गति आदि।
2. बच्चों को उनकी पसंद के गीत सुनवाकर, गीत के साथ प्रयुक्त होने वाले संगीत वाद्य यंत्रों की भिन्न-भिन्न ध्वनियों को पहचानने हेतु प्रेरित करें (साउंड क्लिप्स के द्वारा)।
3. प्रकृति में पाई गई वस्तुओं से निर्मित वाद्यों से कक्षा में आरकेस्ट्रा बजवाना, जैसे— पत्ते टूटे हुए तने, टहनी, टीन के डिब्बे, काँच की बोतल इत्यादि।

पहेली

नीचे दिए गए वाद्यों के नामों को प्रयोग करते हुए रिक्त स्थानों को भरिए। (उत्तर कुंजी में पहेली संख्या 3 पृष्ठ संख्या 92 देखें।)

हारमोनियम, करताल, ढोलक, पुष्कर, तबला, तविल, दिलरूबा, धटम्, घुँघरू, नादस्वरम्, मृदंगम्, सितार, वायलिन, तानपुरा, मंजीरा, इकतारा, इसराज, जलतरंग, नक्कारा

	क			वा					
हा									
			सि			जी			इ
ढो									
			र						
त		ला		मृ	ना				
								ना	
ल			ना				म्		
	खो		ट						
दि									

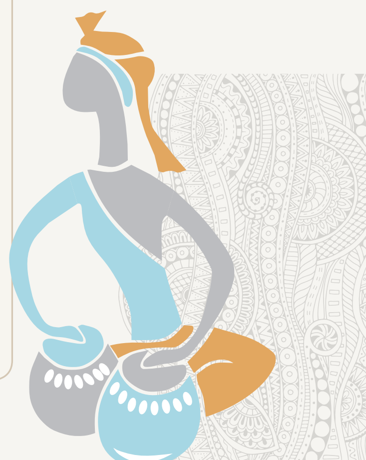

© NCERT not to be republished

बिक्कू महाराज

चित्र 7.26– बिक्कू महाराज

पंडित बिक्कू महाराज के नाम से विख्यात् बनारस घराने के महान तबला वादक पंडित विक्रमादित्य मिश्र का जन्म् 1863 में, बनारस के प्रतिष्ठित संगीतज्ञों के परिवार में हुआ था। घर में पिता संगीत नायक पंडित दरगाही मिश्र और पितामह तबला सम्राट पंडित राम शरण मिश्र जैसे कलाकार थे, अत: बिक्कू महाराज संगीत की ओर आकर्षित हुए। पिता और पितामह से ही उन्होंने तबला सीखा। किंतु गंडा बंधन, गुरु घराने के वरिष्ठ तबला वादक पंडित बलदेव सहाय से किया। रोज़ 15–16 घंटे के रियाज़, गुरुओं द्वारा प्रदत्त ज्ञान और मौलिक चिंतन ने बिक्कू महाराज को जल्द ही एक श्रेष्ठ तबला वादक के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। इन्हें मात्र 23 वर्ष की आयु में खलीफ़ा की उपाधि से सम्मानित किया गया था। इस सम्मान को पाने वाले वे एकमात्र हिंदू कलाकार थे। इन्होंने अपने पिता संगीत नायक पंडित दरगाह मिश्र से गायन और सितार की भी शिक्षा प्राप्त की थी। ये अच्छे रचनाकार भी थे।

पंडित बिक्कू महाराज का तबला वादन सर्वांगीण था। इनका रेला सुनकर ऐसा लगता था जैसे कई भौंरे गुंजार कर रहे हों। इन्हें हज़ारों गत-फ़र्द याद थे। छंद शास्त्र के ज्ञाता बिक्कू महाराज को तबला वादन की अन्य शैलियों में भी दक्षता प्राप्त थी। वादन में शुद्धता, कर्णप्रियता, सरसता, और मोहकता इनकी विशेषता थी। ये अपने प्रभावशाली वादन से विभिन्न रसों की सफल निष्पत्ति करते थे। पंडित कंठे महाराज के अनुसार, ये जब टुकड़े, परनों की प्रस्तुति करते थे तो ऐसा लगता था जैसे आकाश में मेघ गर्जन-तर्जन हो रहा हो और सम पर आते थे तो ऐसा लगता था जैसे पहाड़ का कोई बड़ा आकार गिरा हो। लेकिन, रेला आदि के वादन के समय ऐसा लगता था जैसे नदी की कल-कल धारा प्रवाहित हो रही हो। पं. बिक्कू महाराज ने उत्तर प्रदेश के प्रथम संगीत विद्यालय काशी संगीत समाज (वाराणसी) में कई वर्षों तक अध्यापन कार्य भी किया था। शिक्षा प्रदान करने के मामले में अत्यंत उदार होने के कारण इन्होंने लगभग तीन सौ लोगों को तबला वादन की शिक्षा दी थी।

जमीरा के राजा लल्लन बाबू उर्फ़ शन्तुजय प्रसाद सिंह ने तबला इन्हीं से सीखा था। उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ के बेटे मकबूल हुसैन खाँ, पंडित भोलानाथ पाठक एवं मृदंगाचार्य मन्नू भी इन्हीं के शिष्य थे। सामता प्रसाद, जो कि गुदई महाराज के नाम से भी प्रसिद्ध थे, के पिता के निधन के बाद उन्हें अपने घर में पुत्रवत स्नेह देकर सिखाने वाले बिक्कू महाराज ही थे। महाराज के सुपुत्र तबला शिरोमणि पंडित गामा महाराज और पौत्र रंगनाथ मिश्र भी श्रेष्ठ कलाकार हुए। स्वतंत्र वादन और संगति, दोनों में सिद्ध महाराज चतुर्मुखी वादक थे। इन्होंने अपने युग के सभी बड़े कलाकारों के साथ वादन किया था। बिक्कू महाराज के जीवन का उत्तरार्द्ध बीमारी से लड़ते हुए बीता। सन् 1945 के मार्च महीने में बिक्कू महाराज का निधन हो गया।

© NCERT not to be republished

8 तबला एवं पखावज वाद्यों के घरानों का वर्णन

हमारे देश में संगीत राजाओं के दरबारों में व्याप्त था, परंतु जब राजाओं का युग समाप्त हो गया एवं अंग्रेज़ों ने धीरे-धीरे हमारे देश पर राज करना शुरू कर दिया, तो संगीतज्ञों एवं संगीतकारों ने अलग-अलग रहकर अपने परिवार और शिष्यों को प्रशिक्षण दिया। बहुत कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने अपनी कला और शैली को जीवित रखा।

जब किसी असाधारण प्रतिभाशाली कलाकार द्वारा किसी विशिष्ट शैली (गायन, वादन अथवा नृत्य) का निर्माण होता है, जिसका पालन उसी रूप में उसकी वंश परंपरा तथा शिष्य परंपरा में कई पीढ़ियों तक होता है, तब किसी घराने का निर्माण होता है। उत्तर भारतीय संगीत में घरानों की शुरुआत मुगल काल के अंतिम दौर से ही मानी जाती है। संगीत को समृद्ध बनाने में घरानों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक ओर घरानों ने संगीत की किसी विधा की शैलीगत विशेषताओं को संरक्षित किया, उनका प्रचार-प्रसार किया तो दूसरी ओर संगीत शैलियों की विविधता को विस्तार दिया और उसे नीरस होने से भी बचाया।

तबला वाद्य का इतिहास लगभग तीन-साढ़े तीन सौ वर्ष पुराना है। इन वर्षों में तबले के छह घराने विकसित हुए, इन घरानों की अपनी-अपनी शैलीगत विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर असंख्य बंदिशों का निर्माण हुआ है तथा जिन्होंने तबले के साहित्य को विविधता से समृद्ध किया है। विभिन्न घरानों की वादन शैलियों को 'बाज' कहा जाता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तबले के बाज को मूलतः दो भागों में बाँटा गया है— पश्चिम बाज और पूरब बाज। पश्चिम बाज के अंतर्गत दिल्ली और अजराड़ा घराने की वादन शैली आती है, जबकि पूरब बाज के अंतर्गत लखनऊ, फ़रुखाबाद और बनारस घराने की वादन शैली आती है। इसके अतिरिक्त पंजाब घराने का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ माना जाता है। तबले के घरानों का संक्षिप्त परिचय निम्न है।

दिल्ली घराना

यह तबला वादन का प्रथम घराना माना जाता है। यह घराना मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले के शासन काल में विकसित हुआ। इस घराने की स्थापना उस्ताद सिद्धार खाँ डाढ़ी ने की। उन्होंने अपने पुत्रों एवं शिष्यों को शिक्षा देकर इस घराने को आगे बढ़ाया। उस्ताद सिद्धार खाँ ने पखावज पर बजने वाले खुले और ज़ोरदार बोलों को तबले पर बजाए जाने के अनुकूल बनाकर एक नई शैली

© NCERT not to be republished

विकसित की, जो दिल्ली बाज के नाम से जानी गई। इसे 'दो अँगुलियों का बाज' या 'किनार का बाज' भी कहते हैं। दिल्ली बाज में तिट, धिट, तिरकिट, धाति, धगेनधा, धिन-गिन, तिन-किन आदि बोलों के व्यवहार की प्रधानता रहती है। पेशकार, चतस्त्र जाति के छोटे कायदे व रेला के वादन के लिए यह बाज जाना जाता है। इस घराने में नत्थू खाँ, महबूब खाँ मिरजकर, गामी खाँ, इनाम अली खाँ, लतीफ़ अहमद खाँ, शफात अहमद खाँ आदि प्रसिद्ध तबला वादक हुए, जिन्होंने इस घराने की वादन शैली को नए आयाम दिए।

अजराड़ा घराना

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ ज़िले में अजराड़ा नामक गाँव है। इसके मूल निवासी कल्लू खाँ और मीरू खाँ ने दिल्ली जाकर उस्ताद सिताब खाँ से तबला वादन की शिक्षा ग्रहण की और वापस आकर इसकी वादन शैली में परिवर्तन करके अजराड़ा घराने की स्थापना की। दिल्ली से संबद्ध होने के कारण इसकी सारी विशेषताएँ अजराड़ा बाज में आना स्वाभाविक ही है। फिर भी इसकी कुछ अपनी निजी विशेषताएँ हैं जिस कारण इस घराने को मान्यता प्राप्त हुई। इसमें बायाँ या डग्गा का व्यवहार बहुत कलात्मक रूप से किया गया एवं इस कारण तबले की नादात्मकता में सकारात्मक एवं प्रगतिशील परिवर्तन आया। बायाँ के बोलों को प्रधानता देते हुए आड़ी लय के कायदों का प्रसार हुआ। डग्गे के बोलों की प्रधानता, तबले और डग्गे के वर्णों के गुथाव से निर्मित बोल— घेतग, घेनग, घेघेनक, दिंग-दिनागिन, धातग-घेतग आदि का प्रचलन, त्रिस्त जाति के कायदे का अधिक प्रयोग आदि को इस घराने की विशेषताओं के अंतर्गत माना जाता है। इस घराने के प्रमुख कलाकारों में, हबीबुद्दीन खाँ, सुधीर कुमार सक्सेना, मनमोहन सिंह, सुधीर पाण्डेय, हशमत खाँ, रमज़ान खाँ, अकरम खाँ आदि सम्मिलित हैं।

लखनऊ घराना

अठाहरवीं शताब्दी के मध्य में, दिल्ली की राजनैतिक अस्थिरता के कारण वहाँ से कलाकारों का पलायन आरंभ हो गया। इसी समय नवाब आसिफुद्दौला के शासनकाल में अवध की नई राजधानी लखनऊ, एक सांस्कृतिक केंद्र के रूप में विकसित हो रही थी। सिद्धार खाँ के पौत्र मोंदू खाँ और बख्शू खाँ लखनऊ आकर बस गए और इन्हें लखनऊ दरबार में राजाश्रय प्राप्त हुआ। लखनऊ उस समय कथक नृत्य और ठुमरी गायन शैली के विकास का केंद्र था। यहाँ उन्होंने कथक और ठुमरी के संगति करने के लिए एक नई वादन शैली विकसित की, जो 'लखनऊ बाज' के नाम से जानी जाती है। कथक नृत्य के साथ संगति के कारण इसे 'नचकरन बाज' भी कहा जाता है। इस बाज में मुक्त प्रहार से बजने वाले खुले बोलों का प्राधान्य रहता है, जिस कारण इस बाज में बजाई जाने वाली रचनाएँ ज़ोरदार और गूँजयुक्त होती हैं। लखनऊ बाज में धिरधिर, घड़ाऽन, तक-घड़ाऽन,

© NCERT not to be republished

कड़ाऽन, किटतक दिंगड़, धिटधिट, गदिगन, धिनगिन, तूना कत्ता आदि बोल प्रचुरता से बजाए जाते हैं। इस बाज में कायदे, रेले, गत, परन, टुकड़े, चक्करदार आदि बजाए जाते हैं। इस घराने में आबिद हुसैन, वाजिद हुसैन, अफ़ाक हुसैन, छुट्टन खाँ, हीरू गांगुली, अनिल भट्टाचार्या, स्वपन चौधरी जैसे महान कलाकार हुए हैं।

फ़र्रुखाबाद घराना

फ़र्रुखाबाद उत्तर प्रदेश का एक ज़िला है। फ़र्रुखाबाद घराने का विकास लखनऊ घराने से ही माना जाता है। फ़र्रुखाबाद निवासी हाजी विलायत अली खाँ ने लखनऊ के उस्ताद बख्शू खाँ से तबला वादन की उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त की और वापस जाकर एक नई शैली प्रचलित की, जो लखनऊ और दिल्ली से काफ़ी अलग थी, जो कालांतर में फ़र्रुखाबाद घराने के रूप में स्थापित हुई। बख्शू खाँ ने अपनी पुत्री का विवाह भी विलायत अली साहब से कर दिया था। इस प्रकार वह उनके शिष्य और दामाद दोनों थे। हाजी साहब अपने समय के उच्चकोटि के संगीतकार, विद्वान, रचनाकार और शिक्षक थे। इस घराने की वादन शैली में खुले बाज (लखनऊ) और बंद बाज (दिल्ली) का सुंदर सम्मिश्रण है। पेशकार और कायदों के अतिरिक्त गतों का वादन फ़र्रुखाबाद बाज की सबसे बड़ी विशेषता है। इस घराने में रेले का वादन एक नवीन रूप में होता है, जिसे 'रौ' कहते हैं। इस घराने में धिरधिरकिटतक, तकिट धा, दिंग, दिंगदीनाघिड़नग, धात्रक-धिकिट, धिनगिन आदि बोलों का प्रयोग किया जाता है। इस घराने के प्रमुख कलाकारों में अमीर हुसैन, अहमदजान थिरकवा, नन्हे खाँ, मसीत खाँ, ज्ञान प्रकाश घोष, करामत उल्ला, साबिर खाँ आदि का नाम उल्लेखनीय है।

बनारस घराना

बनारस निवासी पंडित राम सहाय ने लखनऊ घराने के उस्ताद मोंदू खाँ से तबला वादन की शिक्षा ली थी। कालांतर में राम सहाय ने अपनी प्रतिभा से एक नवीन और मौलिक वादन शैली का निर्माण किया, जिसकी शिक्षा उन्होंने अपने भाई, भतीजों और शिष्यों को दी और इस प्रकार एक विशिष्ट वादन शैली 'बनारस बाज' के रूप में स्थापित हुई। बनारस बाज की वादन शैली में पखावज के मुक्त प्रहार वाले बोलों का आधिक्य दिखाई देता है। पखावज का प्रभाव होने के कारण पेशकार और कायदे के स्थान पर उठान से तबला वादन आरंभ किया जाता है। इसके अतिरिक्त छंद, गत, परन, गत-परन, फ़र्द, चक्करदार रचनाओं के साथ-साथ देवी-देवताओं की स्तुति परनों का वादन इस घराने की प्रमुख विशेषताएँ हैं। बनारस बाज में पूरब बाज के सभी बोलों का प्रयोग करते हुए नाड़ा, धाड़ा, धाड़ागिन, ताड़ागिन आदि बोलों का भी व्यवहार किया जाता है। इस घराने में राम शरण मिश्र, प्रताप महाराज, भैरव सहाय, बिक्कू महाराज, कंठे महाराज, अनोखे लाल मिश्र, सामता प्रसाद, किशन महाराज आदि महान ताबलिक हुए हैं।

© NCERT not to be republished

पंजाब घराना

ऐसी मान्यता है कि पंजाब के पुराने तबला वादकों ने पखावज के ही बोलों के निकास में परिवर्तन करके तबला वादन की एक पृथक शैली का निर्माण किया, जोकि कालांतर में 'पंजाब बाज' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस बाज पर पखावज की वादन शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

इस घराने के संस्थापक लाला भवानी दास उर्फ़ भवानीदीन उर्फ़ भवानी सिंह हैं। भवानी सिंह और दिल्ली घराने के संस्थापक सिद्धार खाँ समकालीन माने जाते हैं। लाला भवानी सिंह ने ताज खाँ, हद्दू खाँ, क़ादिर बख्श जैसे प्रतिभाशाली कलाकारों को तैयार किया, जिन्होंने आगे चलकर पंजाब घराने को विस्तार दिया। इसके अतिरिक्त आपने कई पखावज के कलाकारों को भी शिक्षा दी जिनमें ग्वालियर के कुदऊ सिंह और जोधसिंह प्रमुख हैं। पखावज से प्रभावित होने के कारण यह बाज ज़ोरदार और खुला है। चारों अँगुलियों के साथ तबले पर थाप का प्रहार किया जाता है। बड़ी-बड़ी गतें, परनें, चक्करदार गतें, चक्करदार परनें तथा लयकारियों से युक्त तिहाइयों का प्रयोग इस घराने की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस घराने के कुछ प्रसिद्ध कलाकारों में हुसैन बख्श, फकीर बख्श, करम इलाही, अल्ला रक्खा, ज़ाकिर हुसैन, योगेश शम्शी आदि प्रमुख हैं।

पखावज की कुछ प्रमुख परंपराएँ

कोदऊ सिंह अथवा कुदऊ सिंह पखावज के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कलाकार हुए। अधिकांश लोगों के मतानुसार इनका जन्म 1812 में उत्तर प्रदेश के बाँदा शहर में हुआ और निधन 1907 में हुआ था। पखावज वादन की शिक्षा इन्होंने मथुरा के प्रसिद्ध पखावजी भवानी दीन से प्राप्त की थी, जिन्हें भवानी सिंह और भवानी दास के नाम से भी जाना जाता है। कुदऊ सिंह झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और अवध के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह के दरबार से भी जुड़े थे। इन्हें 'सिंह' की उपाधि भी प्राप्त हुई थी। अपने शिष्यों द्वारा इन्होंने अपनी कला का चतुर्दिक प्रचार-प्रसार किया।

ओजपूर्ण और गंभीर वादन, हथेलियों का प्रयोग, ज़ोरदार, क्लिष्ट और एक-दूसरे से गुँथे हुए वर्ण, जैसे— धड़गण, धड़न्न, तड़न्न, धिलांग, धुमकित, धेत्रा, क्रिधेत, तक्का थुंगा इस परंपरा में अधिक प्रयुक्त होते हैं। कोदऊ सिंह के भाई राम सिंह भी श्रेष्ठ पखावजी थे। राम सिंह के पुत्र जानकी प्रसाद, पौत्र गया प्रसाद और प्रपौत्र पंडित अयोध्या प्रसाद श्रेष्ठ पखावजी हुए। अयोध्या प्रसाद के पुत्र पंडित रामजी लाल शर्मा वर्तमान में इस परंपरा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

नाना पानसे परंपरा

नाना पानसे ने पखावज वादन की शिक्षा अपने पिता सहित बाबू जोधसिंह, मान्याबा कोड़ीतकर, चौण्डे बुवा, मारतण्ड बुवा और योगीराज माधव स्वामी से प्राप्त करके एक नयी वादन शैली

© NCERT not to be republished

सृजित की जिसे 'पानसे परंपरा' कहा गया। इनकी वादन शैली कर्णप्रिय और मधुर थी। आसानी से द्रुतलय में बजने वाले वर्ण, तबले और कथक नृत्य के वर्णों का समन्वय भी इनकी रचनाओं में दिखता है। सुदर्शन नामक एक नवीन ताल की रचना करने वाले नाना पानसे ने प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर कई तालों के ठेकों का नवीनीकरण किया, हज़ारों रचनाएँ भी रचीं और सैकड़ों लोगों को पखावज सिखाया। आज महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और दक्षिण भारत में जो पखावज बजाया जा रहा है, वह नाना पानसे और उनके शिष्यों की ही देन है।

नाथद्वारा परंपरा

नाथद्वारा (राजस्थान) की पखावज परंपरा के नाम से विख्यात इस परंपरा का शुभारंभ सत्रहवीं शताब्दी में तुलसीदास, नरसिंह दास और हालू नामक तीन भाइयों से हुआ। हालू बाद में आमेर आ गए। इस परंपरा में स्वामी, छबील दास, फकीर दास, चंद्रभान, मानजी और रूपराम महान पखावजी हुए। रूपराम के पुत्र वल्लभ दास, 1802 में श्रीनाथद्वारा जाकर बस गए। वल्लभ दास के पुत्र चतुर्भुज, शंकरलाल और खेमलाल हुए। खेमलाल के पुत्र श्यामलाल और शंकरलाल के पुत्र पंडित घनश्याम दास पखावजी महान कलाकार हुए। पंडित घनश्याम दास के पुत्र गुरु पुरुषोत्तम दास ने देश-विदेश में इस परंपरा का प्रचार-प्रसार किया। उनका निधन 21 जनवरी, 1991 को हुआ। इस परंपरा की दो महत्वपूर्ण पुस्तकों— *मृदंग सागर* और *मृदंग वादन* में अनेक सुंदर बंदिशें संकलित हैं। मिठास, माधुर्य और भक्ति प्रधान रचनाओं का वादन इस परंपरा की विशेषता है। इस परंपरा में 'ता' बायें पर और 'क' दायें पर बजता है। किट, किटी, ता, दीं, थुं, ना धिड़नक जैसे वर्णों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है। इस परंपरा की पंचदेव स्तुति परन अत्यंत प्रचलित एवं विख्यात है।

अभ्यास

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पंजाब घराने के कुछ कलाकारों के नाम बताइए।
2. सामता प्रसाद, राम जी मिश्र और गोपाल मिश्र किस घराने के तबला वादक हैं?
3. घराना शब्द से आप क्या समझते हैं?
4. गुदई महाराज का दूसरा नाम क्या था?
5. बायाँ या डग्गे का व्यवहार किस घराने में कलात्मक रूप से किया गया है?

© NCERT not to be republished

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. दिल्ली घराने में तबला किस प्रकार बजाया जाता है?
2. पंजाब घराने में तबला वादन की विधि का वर्णन कीजिए।
3. बनारस घराने के तबला वादक किन-किन विधाओं के साथ बजाने की क्षमता रखते हैं?
4. नाथद्वारा घराने के कुछ पखावज वादकों के नाम बताइए।

सही और गलत बताइए

1. अनोखे लाल मिश्र एवं किशन महाराज पंजाब घराने के तबला वादक हैं।
2. दिल्ली घराने के मूल पुरुष उस्ताद सिद्धार खाँ डाढ़ी थे।
3. घराना शब्द राजमहलों से आया है।
4. लतीफ़ अहमद खाँ बनारस घराने के तबला वादक हैं।
5. दिल्ली घराने का जन्म अकबर के काल में हुआ।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. लाला भवानी दास -- घराने के मूल संस्थापक थे।
2. पंडित राम सहाय -- घराने के कलाकार थे।
3. अजराड़ा -- ज़िले में है।
4. शफात अहमद खाँ -- घराने के तबला वादक हुए।
5. हसमत खाँ एवं अकरम खाँ -- घराने के विख्यात तबला वादक हैं।
6. -- नाथद्वारा घराने की एक विख्यात परन है।

विद्यार्थियों हेतु गतिविधि

1. उठान, बाँट, लग्गी, कवित्त, फ़र्द, परन आदि का वादन अपने शिक्षक के साथ बैठकर देखिए, समझिए एवं इन्हें सीखने का प्रयत्न कीजिए। विभिन्न कलाकारों को बजाते हुए सुनने से अलग-अलग शैलियों का भी ज्ञान प्राप्त कीजिए।
2. नाथद्वारा घराने के कलाकारों से संपर्क स्थापित कर एक परियोजना तैयार कीजिए, जिसमें घराने के प्रमुख कलाकारों के छायाचित्रों एवं प्रचलित बंदिशों का संकलन सम्मिलित हो।

© NCERT not to be republished

हबीबुद्दीन खाँ

चित्र 8.1–हबीबुद्दीन खाँ

तबले के अजराड़ा घराने को एक नई दिशा और नई पहचान देने वाले प्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ का जन्म मेरठ के अजराड़ा गाँव (उत्तर प्रदेश) में सन् 1899 में हुआ था। परिवार में तबला वादन की कला पहले से थी। पिता शम्मू खाँ, पितामह फस्सू खाँ और प्रपितामह काले खाँ तबले के उस्ताद थे। अत: स्वाभाविक ही था कि शिक्षा की शुरुआत घर से ही होती और वह हुई भी। हबीबुद्दीन खाँ बचपन से कुशाग्र बुद्धि के थे। वे अत्यंत परिश्रमी भी थे। उन्होंने शुरू में ही जान लिया था कि अजराड़ा का तबला कई मामलों में सीमित है। अत: वे उसे और अधिक क्षमतावान बनाना चाहते थे। वे अपने वादन को चौमुखा बनाना चाहते थे, इसलिए वे अजराड़ा की सीमा से बाहर निकले।

उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ ने अपने वादन को और अधिक विस्तार देने के उद्देश्य से उस समय के दिल्ली घराने के महान तबला वादक उस्ताद नत्थू खाँ से सीखा। वह कथक नृत्य की संगत भी करना चाहते थे। अत: लखनऊ घराने के उस्ताद अली रज़ा से भी उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। इस तरह दिल्ली और लखनऊ के तबले को जब उन्होंने अजराड़ा के तबले के साथ मिलाकर बजाया तो उसकी चमक ने सबको चमत्कृत कर दिया। यही कारण है कि अजराड़ा घराने की चर्चा चलने पर पहला नाम उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ का ही लिया जाता है, क्योंकि वे इस घराने के पहले ताबलिक थे जो चतुर्मुखी थे। स्वतंत्र वादन और गायन तथा वादन की संगति के साथ-साथ कथक नृत्य की भी उन्होंने बहुत अच्छी संगति की थी। अपने समय के लगभग सभी महान संगीतकारों के साथ उन्होंने संगत की थी। सन् 1940 से 1960 का समय तबला वादन की दृष्टि से हबीबुद्दीन खाँ का था। उस समय उनके नाम का डंका बजता था, उनके बिना कोई संगीत सम्मेलन पूरा नहीं होता था। वह समय खाँ साहब के चरमोत्कर्ष का था, जब देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें स्वर्ण पदक देकर सम्मानित किया। लखनऊ के अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में उन्हें अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। रमज़ान खाँ, मनमोहन सिंह और एस. के सक्सेना जैसे इनके शिष्यों ने भी अच्छी प्रतिष्ठा अर्जित की थी।

© NCERT not to be republished

पहेलियों के उत्तर

पहेली संख्या 1

	बि	हू	ही		का	ल	बे	लि	या
		ग	र	बा		त			
						रा	स	ली	ला
	ध्रु	प	द	ति	ल्ला	ना			व
	गो								नी
बा	र	ह	मा	सा		घू	म	र	रा
	बं		डां	द		जा		ता	ग
	द		डि	रा		व	र्ण	न	म्
लां	गु	रि	या		हो	ली		म्	
			क	ज	री				

आ	वृ	त्ति	स			ठे	ल	
व	बि	ष	म	ती		का	य	दा
र्त		टु		व्र	स्व			
न	प	क	ड़	ता	र	ता	ली	
मु	ख	ड़ा		ल		प		
		अ	पे	श	का	र	षा	स
		व	आ	न्दो	ल	न	ड्	म्पू
	आ	रो	ह		औ	ड्	व	र्ण
अ	ना	ह	त		मो	ह	रा	ग

पहेली संख्या 2

पहेली संख्या 3

	क			वा	य	लि	न	क्का	रा
हा	र	मो	नि	य	म	मं			
	ता		सि			जी			इ
ढो	ल	क	ता	न	पु	रा			स
	पु	ष्क	र			इ	क	ता	रा
त	ब	ला		मृ	ना	प	खा	ब	ज
वि				दं	द	मो		ना	ल
ल		घुँ	ना	ग	स्व	र	म्		त
	खो	घ	ट	म्	र	चं			रं
दि	ल	रू	बा		म्	ग			ग

© NCERT not to be republished

संदर्भ

कासलीवाल, सुनीरा. 2001. *क्लासिकल म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेन्ट्स*. रूपा पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

कुमार, अजय. 2010. *पखावज की उत्पत्ति, विकास एवं वादन शैलियाँ*. कनिष्क पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली.

परांजपे, शरचन्द्र श्रीधर. *भारतीय संगीत का इतिहास*. पृ. 277. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी.

मराठे, मनोहर भालचन्द्र. 1991. *ताल वाद्य शास्त्र — एक विवेचन*. शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर, मध्य प्रदेश.

मिश्र, छोटेलाल. 2004. *ताल प्रसून*. कनिष्क पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली.

मिश्र, पंडित विजयशंकर. 2005. *तबला पुराण*. कनिष्क पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली.

———. 2012. *तबला पुराण*. द्वितीय संस्करण. कनिष्क पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली.

मिश्र, लालमणि. 2005. *भारतीय संगीत वाद्य*. तृतीय संस्करण. भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली.

रामामात्य, पंडित. उपोद्घात प्रकरणम्. *स्वरमेल-कलानिधि*. (अनुवादक, विशम्भरनाथ भट्ट.) पृ. 121. संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्. 2018. ध्वनि का मस्तिष्क पर प्रभाव. *संगीत शिक्षक संदर्शिका*. रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली.

शर्मा, मनोरमा. 2003. *फ़ोक इंडिया — ए कंपेरेटिव स्टडी ऑफ़ इंडियन फ़ोक म्यूज़िक एंड कल्चर*. संदीप प्रकाशन, नयी दिल्ली.

शर्मा, महेन्द्र प्रसाद. 2008. *अवनद्ध वाद्य — सिद्धांत एवं वादन परंपरा*. अभिषेक प्रकाशन, चंडीगढ़.

शारंगदेव, पंडित. 2006. प्रथम स्वरगताध्याय, प्रथम पदार्थ संग्रह प्रकरण. *संगीत रत्नाकर*. श्लोक 23. संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश.

शुक्ल, योगमाया. 2008. *तबले का उद्गम, विकास और वादन शैलियाँ*. प्रथम संस्करण. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय.

© NCERT not to be republished